



अन्तरा शब्दशक्ति

शब्द से संवेदना तक,
संवेदना से विचार तक और
विचार से परिवर्तन तक।

अन्तरा शब्दशक्ति – साहित्यिक वेब अंक (सितम्बर 2026)

सितम्बर 2026 (अंक - 6)



शिक्षक दिवस
महान हस्तियों के अनमोल विचार



रचनाएँ प्रेषित करने हेतु संपर्क सूत्र :-



antrashabdshaktie@gmail.com



9009423393 / 9009465259

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

संपादक की कलम से सितंबर– सृजन, सहभागिता और हिन्दी के उत्सव का महीना

सितंबर का महीना अन्तरा शब्दशक्ति के लिए साहित्यिक सक्रियता और उपलब्धियों से भरा रहा। हिन्दी पखवाड़े के अवसर पर आयोजित “समसामयिक समस्याओं पर लेख प्रतियोगिता” ने इस माह को विशेष पहचान दी। समसामयिक जीवन की गंभीर समस्याओं पर रचनाकारों ने अपनी दृष्टि और विचार प्रस्तुत किए और हिन्दी को वर्तमान समय के सरोकारों से जोड़ने का सार्थक प्रयास किया। इस आयोजन में प्राप्त 77 आलेखों को ई-बुक के रूप में प्रकाशित किया गया तथा रचनाकारों को सम्मान-पत्र प्रदान किए गए। यह अन्तरा शब्दशक्ति की प्रकाशन-यात्रा की एक उल्लेखनीय उपलब्धि रही।

सितंबर में अन्तरा शब्दशक्ति की नियमित साहित्यिक गतिविधियाँ भी निरंतर गतिमान रहीं। ब्लॉग पर लगभग 180 रचनाएँ प्रकाशित हुईं और प्रतिदिन के वेब-अंक में लगभग 75 रचनाएँ पाठकों तक पहुँचीं। विभिन्न विधाओं में रचनाकारों की सहभागिता ने अन्तरा के साहित्यिक परिवार को और व्यापक बनाया। यह निरंतरता हमारे लिए केवल आँकड़े नहीं, बल्कि हिन्दी के प्रति रचनाकारों के विश्वास और साहित्य को निरंतर पाठकों तक पहुँचाने की हमारी प्रतिबद्धता का प्रमाण है।

साहित्य के साथ सितंबर भारतीय संस्कृति के विविध रंगों से भी जुड़ा रहा। श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, गणेश चतुर्थी, ऋषि पंचमी, विश्वकर्मा पूजा, अनंत चतुर्दशी और पितृपक्ष जैसे अवसरों ने हमारी रचनात्मक अभिव्यक्तियों को संस्कृति, संस्कार, आस्था, कृतज्ञता और मानवीय मूल्यों से जोड़े रखा। अन्तरा शब्दशक्ति का प्रयास सदैव रहा है कि साहित्य जीवन से जुड़ा रहे और हमारी रचनाएँ अपने समय, समाज और संवेदनाओं से संवाद करती रहें।

अन्तरा शब्दशक्ति के लिए प्रत्येक रचनाकार महत्वपूर्ण है। हमारा उद्देश्य केवल रचनाओं का प्रकाशन नहीं, बल्कि साहित्य को सम्मानजनक मंच देना, रचनाकार और पाठक के बीच संवाद स्थापित करना तथा हिन्दी की रचनात्मक ऊर्जा को निरंतर आगे बढ़ाना है। सितंबर की उपलब्धियों ने इस विश्वास को और दृढ़ किया है कि जब शब्दों के साथ समर्पण और सहभागिता जुड़ती है, तो एक साहित्यिक मंच एक जीवंत परिवार का रूप ले लेता है।

अब अक्टूबर हमारे सामने है... नई ऋतु, नए पर्व, नए विचार और नए सृजन के साथ। अन्तरा शब्दशक्ति सभी रचनाकारों को आमंत्रित करता है कि अपनी मौलिक कविता, कहानी, लघुकथा, आलेख, संस्मरण, व्यंग्य अथवा अन्य साहित्यिक रचनाएँ हमारे मंच तक पहुँचाएँ। अपनी रचनाएँ वेबसाइट, ई-मेल अथवा दिए गए संपर्क माध्यम से भेजकर इस साहित्यिक यात्रा का हिस्सा बनें। सम्मान रचनाएँ आमंत्रित हैं...

**कलम आपकी, विचार आपके...
मंच अन्तरा शब्दशक्ति का।
आइए, अक्टूबर के पन्नों पर भी
सृजन की एक नई इबारत लिखें।**

**सादर
डॉ. प्रीति समकित सुराना
संस्थापक एवं संपादक
अन्तरा शब्दशक्ति, वारासिवनी
(म.प्र.) – 481331**

1 सितम्बर -30 सितम्बर 2026 – वेबअंक में प्रकाशित रचनाकारों की सूची

1 सितम्बर 2026

- डॉ. प्रीतू समकित सुराना

2 सितम्बर 2026

- रीति झा
- किशोर छिपेश्वर
- प्रा.गायकवाड विलास
- मनीष कुमार पाटीदार

3 सितम्बर 2026

- शैली भागवत 'आस
- डॉ पवन कुमार पाण्डे
- अटल करंयप

4 सितम्बर 2026

- मीरा जैन

5 सितम्बर 2026

- डॉ.दर्विंदर कौर होरा

6 सितम्बर 2026

- किरण मोर

7 सितम्बर 2026

- महेन्द्र तिवारी
- डॉ बबिताचौबे शक्ति
- नवीन माथुर पंचोली

8 सितम्बर 2026

- योगी नारायण नाथ
- साधना छिरोल्या
- संजय वर्मा
- अबरार खान

9 सितम्बर 2026

- स्मृति गुप्ता
- मौसमी मेहरा

10 सितम्बर 2026

- नम्रता सरन "सोना"
- डॉ. वन्दना गुप्ता
- जयकृष्ण चौडक 'जय'

11 सितम्बर 2026

- निरुपमा त्रिवेदी
- सोनिया अक्स
- पदमा राजेन्द्र

12 सितम्बर 2026

- डी. के. कनौजिया
- किरण मोर
- बलजीत सिंह बेनाम

13 सितम्बर 2026

- राज कुमारी
- मुकेश दुबे

14 सितम्बर 2026

- कमलेश कंवल
- आशीष कुमार रस्तोगी

15 सितम्बर 2026

- आकाश पाठक
- उद्देश्य तिवारी 'उदय'
- संजय वर्मा
- जितेन्द्र वर्मा

16 सितम्बर 2026

- श्रीधर पांडेय कृष्णार्थ
- पद्मा मिश्रा
- नमिता दुबे मिश्रा
- अनुपमा शर्मा
- सीता गुप्ता

17 सितम्बर 2026

- मनोज कौशल
- अभिषेक आनंद

18 सितम्बर 2026

- अंजनी मिश्रा
- शिवशंकर दुबे

19 सितम्बर 2026

- मीना विवेक जैन
- साधना छिरोल्या
- मंजू सरावगी मंजरी
- राधा गोयल

20 सितम्बर 2026

- बबिता कुमावत

21 सितम्बर 2026

- विशाखा सिंघल।
- मोहित भाटिया
- आलोकेश्वर चबडाल
- नीलम पांडेय

22 सितम्बर 2026

- वन्दना सिंह
- आचार्या शिखा चंदेल
- अभिषेक आनंद

23 सितम्बर 2026

- साधना छिरोल्या
- आनंद पाण्डेय
- नंदिता तनुजा

24 सितम्बर 2026

- आशीष रस्तोगी

25 सितम्बर 2026

- आशीष रस्तोगी

26 सितम्बर 2026

- दिनकर राव दिनकर
- डॉ. प्रीति समकित सुराना

27 सितम्बर 2026

- प्रदीप कुमार अरोरा
- अरुण कुमार झा 'विनोद'
- शिखर चंद जैन

28 सितम्बर 2026

प्रतियोगिता के
परिणामों की घोषणा

29 सितम्बर 2026

- विशाखा सिंघल।
- महक छाबड़ा
- मधु टाक
- शिवा सिंहल आबुरोड

30 सितम्बर 2026

- मुकेश दुबे

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

बाल साहित्य: "वन चौपाल"

समीक्षक - प्रदीप कुमार अरोरा, पुणे

रचनाकार - डॉ. प्रीति समकित सुराना, वारासिवनी, (म.प्र.)



साहित्य को समर्पित हर रचनाकार की अपनी विधा, प्रस्तुत की जाने वाली रचना के लिए शब्द शैली और विषय अलग-अलग होते हैं। कुछ रचनाकार विविध विषय और विविध विधा में भी लेखन करते हैं, लेकिन अगर कहें कि बाल साहित्य ही लिखना है तब आपके पास विधा हेतु सिर्फ दो विकल्प रह जाते हैं - या तो आप कहानी लिखें या सरलता से गार्डिगुनगुनाई जाने वाली कविता। यहाँ कोई भी रचनाकार अपनी शब्द शैली का उपयोग नहीं कर सकता, उसे अत्यंत सरल शब्दों (जो बालमन को सहज ग्राह्य हो) में तुकबंदी करते हुए अपनी रचना का उद्देश्य निर्धारित करना होता है अर्थात् उन नैतिक मूल्यों के संवर्धन का माध्यम बनना होता है, जो हर बालमन में सदआचरण का अंकुरण पैदा करे। यही कारण है कि "वास्तविक तौर पर किए जाने वाले बाल साहित्य सृजन" को मैं अत्यंत कठिन और गंभीर सृजन मानता हूँ। आज जब प्रीतिजी की "वन चौपाल" देखी, तो आश्चर्य होना स्वाभाविक था। क्योंकि, अब तक उनका गंभीर विषयों पर लेखन, अनुशासित पटल संचालन, सफल संपादन ही देखा था। लेकिन तब, जब स्वास्थ्य की निरंतर प्रतिकूलता हो, बाल साहित्य के प्रति उनका रुझान, सृजन और इससे भी बढ़कर हर रचना के लिए पृष्ठ डिज़ाईनिंग कर उसे पुस्तिकाकार रूप देना, यह सब एक मील के पथर की तरह उल्लेखनीय उपलब्धि ही है।

"वन चौपाल" में बच्चों के लिए कुल 32 प्रेरक कविताएँ हैं, या यों कहा जा सकता है कि बाल मन को पढ़कर, उनके कोमल मन को पोषित करने वाले हर एक नैतिक मूल्यों को पिरोने के सफल प्रयास के साथ तैयार की गई 32 मनकों की यह माला है "वन चौपाल"।

हम देखते हैं कि पुस्तक में शामिल कविता "पत्तों की सीख" प्राणी जगत में त्याग और सहयोग की भावना को बढ़ावा देती नजर आती है। "टूटा तिनका...", "नदी में आई बाढ़" जैसी रचनाएँ विपत्ति में हौसला रखना सिखाती है।

बच्चों को मोह / लालच से दूरी बनाए रखने और विपत्ति में फंसे मित्रों की मदद करने का पाठ "शिकारी का जाल" जैसी रचना में बड़ी सरलता और रोचकता के साथ प्रस्तुत हुआ है। कविता "जंगल की पाठशाला" में पढ़ाई की महत्ता को गहरे से समझाया गया है। वहीं आज के दौर में तेजी से पनप रही विसंगति (मोबाइल फोन की लत) का समाधान, कविता "खेलें खेल, छोड़ें स्क्रीन" में मिलता है।

जीवन के सुनहरे पलों को सहेजने की प्रेरणा देती कविता "वन का सुंदर त्योहार" अपने आसपास के परिवेश में उत्साह उमंग और मस्ती का नजारा प्रस्तुत करती है।

इस प्रकार हर रचना में कोई न कोई नेक संदेश है, नैतिक मूल्य की गाथा गुंथी हुई है। यही कारण है कि पुस्तक की हर रचना मजबूर करती है कि उसकी विशेषता को उबारकर यहाँ प्रस्तुत किया जाए, किंतु "मेरी दृष्टि में फिलहाल "पुस्तक की समग्र समीक्षा के लिए" उसकी चुनिंदा रचनाओं का मूल्यांकन प्रस्तुत करना ही पर्याप्त होगा।

प्रकाशित किताबें

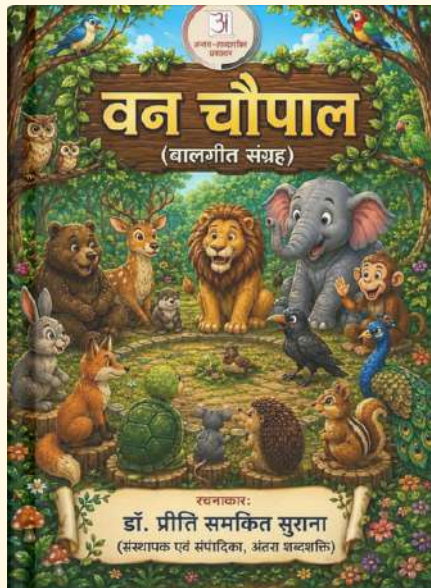
- पीएचडी थीसिस (समाज शास्त्र)
- मन की बात (कविता संग्रह)
- मेरा मन (कविता संग्रह)
- दृष्टिकोण (आलेख संग्रह)
- कतरा-कतरा मेरा मन (कथा संग्रह)
- काश! कभी सेचा होता... (व्यंग्य काव्य संग्रह)
- गद्य लेखन का महत्व (आलेख पुस्तिका)
- विचार क्रांति (हिन्दी पर विशेष विचार संकलन)
- जोगराज जी का वंशवृक्ष (परिवार परिचय)
- कर्म इत्तीसा (धार्मिक पुस्तिका)
- अंतर शब्दशक्ति (संस्थान परिचय)
- सुनो ! (मेरे मन की बात...)
- छोटी-छोटी बातें (टेबिल कैलेंडर)
- आपातकाल में सृजन फुलवारी
- प्रीत के गीत
- सृष्टि मेरे आँचल में...!
- मित्रता में मोती
- स्प्रिचुरल कॉर्नर (डायरी विथ पॉजिटिव थॉट्स)
- और तुम !
- संभवनाथ परिवार (डायरेक्टरी एवं प्रेरक मुक्तक)
- मेरे गुरु 'विराट'
- मैंने लिखा, तुम पढ़ो ?

गुजराती अनुवाद

- काश! कभी सेचा होता,...
(गुजराती अनुवादक)--स्व. रक्षित दवे 'मौन'

अंत में मैं यही कहूँगा कि "वन चौपाल" बच्चों के मन को भाने / लुभाने वाली वह पुस्तक साबित होगी, जो उनके जीवन विकास में नींव का पत्थर बनेगी।

डॉ. प्रीति जी सुराना को इस श्रेष्ठ उपलब्धि के लिए हार्दिक बधाई साथ ही अनंत शुभकामनाएं कि वे अपने स्वास्थ्य की अनुकूलता के साथ साहित्य सेवा के लक्ष्यों की प्राप्ति में निरंतर सफल होती रहें।



परिचय

नाम: डॉ. प्रीति समकित सुराना
स्वतंत्र लेखिका, प्रकाशक
टैरो-न्यूमरोलॉजिस्ट,
हीलर काउंसिलर, रेकी ग्रैंड मास्टर

शिक्षा: पीएचडी (समाज शास्त्र)

कार्यक्षेत्र: व्यवसाय एवं प्रकाशन

सामाजिक क्षेत्र: गौ सेवा,
समाज सेवा एवं साहित्य सेवा

विशेष

- 700 से अधिक पुस्तकों का संपादन
- 100 से अधिक साझा संग्रह में रचनाएँ शामिल
- विश्व रिकॉर्ड
(2 इंडिया बुक ऑफ रिकॉर्ड्स/
1 एशिया बुक ऑफ रिकॉर्ड्स/
1 लन्दन बुक ऑफ रिकॉर्ड्स/
1 ओएमजी बुक ऑफ रिकॉर्ड्स)
- कनाडा, नेपाल एवं भारत में
100 से अधिक सम्मान प्राप्त

ईमेल :- pritisamkit@gmail.com
pritisamkit17@gmail.com
antrashabdshakti@gmail.com

ब्लॉग :- प्रीति-देशलहरा.ब्लॉगस्पॉट.कॉम (मेरा मन)

वेबसाइट :-
antrashabdshakti.com pritisamkit.com

डॉ. प्रीति जी सुराना



अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

हर ठहराव में एक नई राह है

हर ठहराव में एक नई राह है,
दिल के किसी कोने में एक अनजानी चाह है।
कभी कदम थमते हैं, कभी राहें बदलती हैं,
कभी आँखों में खुशियाँ, कभी पलकों पर नमी पलती है।

ज़िंदगी हर मोड़ पर कुछ नया सिखाती है,
कभी हँसाती है, कभी चुपके से रुलाती है।
कभी अपनों का साथ बन जाता है हौसला,
कभी अकेलापन ही सिखा देता है जीने का सिलसिला।

कुछ रिश्ते फूलों-से महकते हैं जीवन में,
कुछ यादें दीपक बन जलती हैं मन में।
कुछ लोग राहों में मिलकर साथ निभाते हैं,
कुछ बिना कहे ही बहुत कुछ सिखा जाते हैं।

सपनों की भी अपनी एक उड़ान होती है,
हर चाहत कहाँ पूरी आसान होती है।
कभी सफलता माथे पर तिलक सजाती है,
कभी असफलता भीतर की ताकत जगाती है।

जब आँधियाँ आएँ और राहें धुंधली हों,
जब उम्मीदों की सारी किरणें मद्धिम हों,
तब अपने भीतर का दीप जलाना,
गिरकर भी हर बार मुस्कुराना।

जो बीत गया, उसे अनुभव बन जाने दो,
जो आने वाला है, उसे सपना सजाने दो।
हर दर्द को अपनी शक्ति बनाना,
हर पल को जीना, हर पल से सीख कर आगे बढ़ जाना।



→ रीति झा

अच्छे दिन का सपना जैसे टूट गया

अच्छे दिन का सपना जैसे टूट गया
ऊपर वाला जैसे की अब रूठ गया
बढ़ी महंगाई तेलों के है दाम बढ़े
आम आदमी जैसे की अब लूट गया
अच्छे दिन का.....
नेताओं के भाषण सारे झूठे है
ख़्वाब हमारे सारे ही अब टूटे है
कमर हमारी टूटी है जेबें भी ढीली है
भाग्य हमारे जैसे की अब फूटे हैं
अच्छे दिन का.....
महंगी शिक्षा बच्चे पढ़ाना मुश्किल है
अब समझे उनको बढ़ाना मुश्किल है
देख के अब हालात रोना आ जाता है
हॉस्पिटल दवा के खर्च उठाना मुश्किल है
अच्छे दिन का.....
आमदानी से खर्चा अब तो ज्यादा है
शोषण का ही चर्चा अब तो ज्यादा है
आम आदमी मरे यहाँ पर नेताओं का जलवा है
बड़े लोगो का दर्जा अब तो ज्यादा है
अच्छे दिन का.....
अच्छे दिन का सपना जैसे टूट गया
ऊपर वाला जैसे की अब रूठ गया
बढ़ी महंगाई तेलों के हैं दाम बढ़े
आम आदमी जैसे की अब लूट गया

→
किशोर छिपेश्वर "सागर"
बालाघाट

सब होंगे अपने

नफरतें मिटा देगी, प्यार में ही जीत होगी।
आग वही बुझा देना, सब होंगे अपने।

ज्योति प्रीत की जलाना, द्वेष मन से मिटाना।
पराया भी भूलें बैर, सब होंगे अपने।

वक्त नहीं है अपना, जैसे टूटता सपना।
स्नेह कोई न भूलाता, सब होंगे अपने।

मिठास मन की जोड़े, अहंकार सब तोड़े।
प्रीत से ही प्रीत बढ़े, सब होंगे अपने।

कोई न भूलें अच्छाई, जानों युगों की सच्चाई।
मिसाल बनती यादें, सब होंगे अपने।

बने चलो हमराही, पीछे न छोटे वो राही।
सफ़र लगे सुहाना, सब होंगे अपने।

मौत भी मिटा न सकें, कफ़न जला न सकें।
जलें काया नाम नहीं, सब होंगे अपने।

नफरतें मिटा देगी, प्यार में ही जीत होगी।
कल रहे ना रहेंगे, सब होंगे अपने - - -



→ प्रा. गायकवाड विलास

इक जवाब का इंतज़ार था

बरसते फूलों की बहार था।
जब उनसे बहुत प्यार था।

रेशमी जुल्फें सँवारते देखा,
आना - जाना लगातार था।

क्रिताबों में खत भेजे थे,
इक जवाब का इंतज़ार था।

हाथ हिलाकर इशारा करना,
गुस्सा बहुत तेज तर्रार था।

काश होता कोई हमसफ़र-सा,
बस इक हौ का तलबगार था।



मनीष कुमार पाटीदार

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

कविता

गमों में भी अक्सर खुशी देखती
मैं कुछ इस तरह ज़िन्दगी देखती हूँ

कभी देखती हूँ उन्हें, मुझपे मरते
कभी उनकी मैं बेरुखी देखती हूँ

कमी तो नहीं है किसी चीज की अब
मगर फिर भी है कुछ कमी, देखती हूँ

खुशी बाँटने से खुशी गर मिले तो
ज़रा बाँट कर मैं खुशी देखती हूँ

यूँ वैसे सभी मुस्कुराते हैं लेकिन
दुःखी है हर इक आदमी देखती हूँ

यही मुश्किलें कल भी थीं औरतों की
यही मुश्किलें आज भी देखती हूँ

यही सोचती हूँ कि क्या होगा आखिर
कली जब कोई अधखिली देखती हूँ

-शैली भागवत 'आस'



ग्रीष्म ऋतु के प्रकोप

आग उगल है रवि रहा, गर्मी हुई प्रचण्ड।
शीतल हो यह तन कहाँ, बचा नहीं भूखण्ड।

वृक्ष सघन भी अब नहीं, दे पाते हैं छाँव।
पशु पक्षी भी ढूँढते, अपना-अपना ठाँव।

ताल, नदी पोखर नहर, सूख हुए जलहीन।
विकल प्यास से सब हुए, प्राण गँवाती मीन।

निर्मम अति ऋतु ग्रीष्म की, झुलसाती है धूप।
विनय करें दिनकर सभी, तजो उग्र यह रूप।



डॉ पवन कुमार पाण्डे

मनस्थिति

पता नहीं, नयी कंपनी, नये लोग, सब कैसे होंगे?

क्या मैं वहाँ सेट हो पाऊंगा, कब तक वहाँ नौकरी खिच पायेगी आदि-आदि?

इसी उधेड़बुन में ट्रेन की स्लीपर क्लास की खिड़की से झांकते हुए दौड़ती ट्रेन और समानांतर पीछे छूटती पटरियों को देखते हुए अटल सोच रहा था।

नयी नौकरी बड़ी जद्दोजहत के बाद मिली थी कुछ कम पैसों में समझौता करके। न चाहते हुए भी अनिच्छा से उसने उस कंपनी के ऑफर लेटर को स्वीकार किया था क्योंकि घर में सात माह बैठकर उसे नौकरी की कदर अच्छे से मालूम हो गयी थी।

धर्मपत्नी ने उसके सारे कपड़े और रोजाना की जरूरतों का सामान दो सूटकेसों में पैक कर दिया था। उसने भी अभी अकेले जाकर नौकरी ज्वाइन करने के बाद परिवार को नये शहर में शिफ्ट करने का सोचा था क्योंकि उसे पता था कि नयी नौकरी में शुरुआत में छुट्टी और कंपनी के नये माहौल में जमने की बहुत झंझट होती है।

अटल अभी भी अपनी पुरानी विदेश की नौकरी को याद कर रहा था, कितना सुकून और पैसा सब कुछ था पर एक झटके में ही कंपनी आर्थिक तंगी के कारण बंद हो गयी और उसे न चाहते हुए भारत वापिस आना पड़ा।

उसे भी अहसास था कि भारत में उसे इतना पैसा, सुकून और कैरियर के ढलान पर शायद ही कोई कंपनी उसे मौका दे।

उसके इस अहसास को जल्द ही वास्तविकता का रंग मिल गया जब सात माह बैठकर बड़ी मुश्किल से उसे यह जॉब समझौता करके मिला।

उसने अपने जरूरी खर्चों कि लिस्ट बनाकर और पत्नी से विस्तृत चर्चा के बाद अपनी भारत में नौकरी की नई पारी की आखिर में शुरुआत कर दी।

कंपनी भी छोटी थी, न कोई कैटीन, न कोई स्टाफ-बस, न कोई सुबह-शाम की चाय।

बस ढेर सारा काम और ढेर शाम को काम का हिसाब। मालिक भी ऑफिस में लगातार बैठे सीसीटीवी से निगरानी करता रहता, मजाल कोई रत्तीभर भी काम में ढिलाई कर दे।

सैलरी भी अब विदेश की सैलरी के उलट माह की दस तारीख को आती और वह भी आने के बाद एक दिन में साफ हो जाती।

रात को रोज सोने के पहले वह सोचता- कब तक ऐसा करना पड़ेगा, कब तक यह सब खींचना पड़ेगा?

यह सोचते-सोचते कब आँख लग जाती और सुबह फिर उसी रूटीन में शामिल होने के लिए वह घर से निकल जाता।

पर कहते हैं कि खुद के बनाए प्रश्नों के उत्तर भी खुद के द्वारा तैयार किए होते हैं।

वह अब भलीभांति समझ गया था कि उसकी मन की उलझन को सुलझाने का हल सिर्फ उसी के पास है अर्थात समस्या भी वह खुद है और हल भी वह खुद है।

आज अटल खुद को हल्का महसूस कर रहा था उसने अपनी वर्तमान परिस्थिति को देखकर अपनी मनस्थिति बदल ली थी और नौकरी उसे अब झंझट की बजाय एक जिम्मेदारी लग रही थी।

वह अब मोबाइल पर पत्नी का नंबर डायल कर रहा था,

और सुनाई पड़ रहा था अगले हफ्ते घर आने के लिए और

नये शहर में शिफ्ट करने के लिए घर का सामान पैक रखने के लिए।



अटल कश्यप, भोपाल (म.प्र.)



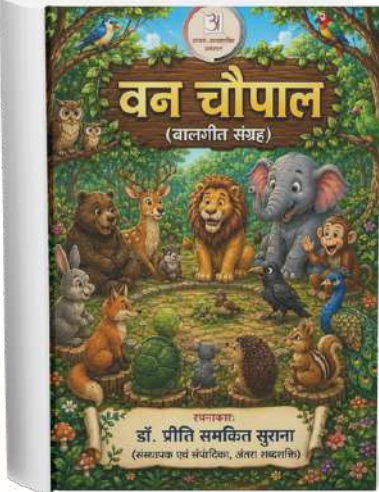
अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

भूमिका

साहित्य जगत विविधताओं का अनोखा संगम है इन्हीं विविधताओं के माध्यम से ही साहित्य को संपूर्णता प्राप्त होती है। साहित्य की अनेक विधाएँ हैं कोई साहित्यकार किस विधा में पारंगत होता है तो कोई किस विधा में, उनकी सामूहिक रचनात्मकता से ही अतीत से लेकर वर्तमान तक साहित्य जगत दैदीप्यमान है। साहित्य की इसी परिधि में एक अति महत्वपूर्ण स्थान है बाल साहित्य का। बाल साहित्य, साहित्य की प्रथम पायदान कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी क्योंकि यह देश के भावी नागरिक अर्थात् बालको के व्यक्तित्व विकास एवं श्रेष्ठ आचरण निर्माण का सशक्त माध्यम है। बाल साहित्य की इन्हीं विशेषताओं के मद्देनजर लिखी गई है प्रस्तुत किताब **जंगल की चौपाल**।

बहुमुखी प्रतिभा की धनी अनेक पुस्तकों की रचयिता, प्रकाशक होने के साथ ही संपादन के क्षेत्र में भी विशिष्ट पहचान बनाने वाली **सुश्री प्रीति समकित सुराना** के द्वारा बाल साहित्य पर अपनी पैनी कलम की धार से अत्यंत ही सरल भाषा शैली एवं लयबद्ध तरीके से लिखी गई छोटी-छोटी **32 कविताएं** पशु-पक्षी एवं जंगल पर आधारित हैं।

श्री। उज्जैन जंगल की चौपाल



इन कविताओं में उद्धृत विचारों से ही स्पष्ट हो जाता है कि लेखिका की लेखनी कितनी प्रभावी है। कविताओं में उन गुणों को प्रदर्शित करने की चेष्टा की गई है जो बालकों के उत्तम चरित्र निर्माण में सहायक है। दिखने में हल्की-फुल्की किंतु इन कविताओं में जो सार समाहित है वह उत्कृष्ट एवं बाल मन के अनुकूल उन्हें आकर्षित ही नहीं प्रभावित करने वाली भी है। इन कविताओं के ध्येय पर यदि दृष्टिपात किया जाए तो क्रमशः परोपकार, प्रेम, त्याग, करुणा, दान, दया, एकता, सहयोग, साहस, सच्ची मित्रता, कर्म की महत्ता, सद्भावना, मधुर वाणी, सत्य, न्याय प्रियता, ईमानदारी, पर्यावरण, स्वास्थ्य, स्वच्छता, समानता, सहिष्णुता, जल के प्रति सजगता आदि तत्व उभर कर आते हैं। मानवीय मूल्य से परिपूर्ण इन तत्वों का समावेश ही कविताओं की विशिष्ट विशिष्टता है और यही विशिष्टता वर्तमान में जीर्ण शीर्ण हो रहे संस्कारों को पुनर्जीवित करने हेतु बालको में नव चेतना, नव ऊर्जा भरने के प्रयास से लबालब है। न्यूनता में संपूर्णता का आभास करती है ये कविताएं बालोपयोगी एवं मनोरंजक है। नकारात्मकता से पूर्णतया विरक्त सकारात्मक होने के कारण अपनी प्रभावोत्पादकता में असीम वृद्धि करने में कामयाब प्रतीत होती हैं। बस आवश्यकता है **जंगल की चौपाल** हर घर, हर स्कूल की चौपाल बने जिससे बच्चों के सुंदर एवं सुदृढ़ भविष्य का निर्माण हो सके।

यह पुस्तक बाल-बाल में लोकप्रिय हो इसी कामना के साथ लेखिका सुश्री प्रीति समकित सुराणा को बहुत-बहुत बधाई!

मीरा जैन

516 साँझनाथ कॉलोनी (सेठी नगर) उज्जैन (मध्य प्रदेश)

मोबाइल नंबर-

9425918116

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

शिक्षक दिवस की
हार्दिक शुभ कामनाएँ

आज की जेन Z और शिक्षक की भूमिका

बदलते समय में शिक्षा और संस्कार का नया रिश्ता



समय कभी ठहरता नहीं। हर पीढ़ी अपने साथ कुछ नया लेकर आती है और पुरानी पीढ़ी के सामने एक नया प्रश्न खड़ा कर देती है— क्या हम बदलते समय के साथ बदल पाएँगे?

आज की पीढ़ी, जिसे सामान्यतः 'जेन Z' कहा जाता है, उसी परिवर्तन का जीवंत उदाहरण है। यह वह पीढ़ी है जिसने किताबों के साथ इंटरनेट को, ब्लैकबोर्ड के साथ स्मार्ट स्क्रीन को और शिक्षक के साथ गूगल तथा एआई को भी अपना ज्ञान-स्रोत बना लिया है। उसके हाथ में मोबाइल है, दुनिया उसकी उँगलियों पर है और जानकारी पाने में उसे कुछ सेकंड से अधिक समय नहीं लगता। लेकिन सवाल यह नहीं है कि आज के बच्चे तकनीक का उपयोग क्यों करते हैं। असली सवाल यह है कि **इतनी सारी सूचनाओं के बीच वे सही ज्ञान, सही मूल्य और सही दिशा कहाँ से पाएँगे?**

यहीं शिक्षक की भूमिका पहले से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है।

*** जानकारी और ज्ञान में अंतर ***

आज का विद्यार्थी किसी भी विषय पर जानकारी इंटरनेट से प्राप्त कर सकता है। किसी कठिन गणित के प्रश्न का हल, विज्ञान का कोई प्रयोग, इतिहास की घटना या किसी शब्द का अर्थ—सब कुछ एक क्लिक में सामने आ जाता है।

लेकिन जानकारी का मिल जाना ही ज्ञान नहीं है।

इंटरनेट विद्यार्थी को बता सकता है कि **क्या है**, **मुझाई समझा सकता है कि कैसे करना है**, लेकिन यह तय करवा कि **क्या सही है**, **क्या गलत है**, **क्या उपयोगी है और उसका जीवन में किस प्रकार प्रयोग करना है** यह विवेक सिखाने का काम शिक्षक ही कर सकता है।

शिक्षक अब केवल पाठ पढ़ाने वाला व्यक्ति नहीं रहा। वह विद्यार्थी के लिए 'मार्गदर्शक, विचार-निर्माता और विवेक का दीपक' बन गया है।

*** जेन Z को उपदेश नहीं, संवाद चाहिए ***

आज का विद्यार्थी प्रश्न करता है। वह हर बात को केवल इसलिए स्वीकार नहीं करता क्योंकि शिक्षक ने कह दी है— "क्यों?", "कैसे?", "अगर ऐसा न हो तो?", "क्या इसका दूसरा तरीका भी हो सकता है?"

कभी-कभी यही प्रश्न शिक्षक को चुनौती जैसे लग सकते हैं, लेकिन वास्तव में ये प्रश्न सीखने की प्रक्रिया का हिस्सा हैं।

आज के शिक्षक को "मैं शिक्षक हूँ, इसलिए मेरी बात अंतिम है" वाली सोच से आगे बढ़ना होगा।

उसे कहना होगा—"आओ, इस प्रश्न का उत्तर हम मिलकर खोजते हैं।"

जहाँ संवाद होगा, वहाँ जिज्ञासा जन्म लेगी और जहाँ जिज्ञासा होगी, वहीं वास्तविक शिक्षा का आरंभ होगा।

मोबाइल दुश्मन नहीं, उसका सही उपयोग सिखाना जरूरी है

मोबाइल को लेकर अवसर शिकायत होती है कि बच्चे हर समय फोन में लगे रहते हैं। यह चिंता पूरी तरह निराधार भी नहीं है। अत्यधिक स्क्रीन समय, सोशल मीडिया की तुलना, लगातार बदलती सूचनाएँ और मनोरंजन की आदत विद्यार्थी की एकाग्रता को प्रभावित कर सकती है।

लेकिन मोबाइल को केवल प्रतिबंधित कर देना समाधान नहीं है।

शिक्षक यदि उसी मोबाइल को सीखने का माध्यम बना दे तो तस्वीर बदल सकती है। ऑनलाइन संग्रहालय, शैक्षिक वीडियो, डिजिटल पुस्तकालय, भाषा सीखने के साधन और एआई आधारित अध्ययन उपकरण—ये सभी विद्यार्थी के लिए उपयोगी हो सकते हैं।

इसलिए आवश्यकता तकनीक से दूरी की नहीं, तकनीक के विवेकपूर्ण उपयोग की शिक्षा देने की है।

एआई के दौर में शिक्षक की जरूरत कम नहीं, ज्यादा हुई है

आज एआई ने शिक्षा की दुनिया में एक नया अध्याय खोल दिया है। विद्यार्थी प्रश्न पूछ सकता है और कुछ ही क्षणों में उत्तर प्राप्त कर सकता है। वह किसी विषय को अलग-अलग तरीकों से समझ सकता है।

लेकिन एआई की सबसे बड़ी सीमा भी यही है— वह उत्तर दे सकता है, पर हर उत्तर को सही मान लेने की बुद्धि नहीं दे सकता।

एक विद्यार्थी यदि एआई से उत्तर लेकर उसे बिना समझे अपनी कॉपी में लिख देता है, तो उसका ज्ञान नहीं बढ़ता। शिक्षक उसे यह सिखा सकता है कि उत्तर को परखा कैसे जाए, तर्क कैसे किया जाए और स्वयं सोचने की आदत कैसे विकसित की जाए।

भविष्य का श्रेष्ठ शिक्षक वह नहीं होगा जो एआई से मुकाबला करेगा, बल्कि वह होगा जो विद्यार्थी को एआई का जिम्मेदार और रचनात्मक उपयोग करना सिखाएगा।

आज का विद्यार्थी भावनाओं को भी समझे जाने की अपेक्षा करता है

आज की पीढ़ी के सामने प्रतियोगिता बहुत अधिक है। पढ़ाई, करियर, सोशल मीडिया, मित्रता, भविष्य की चिंता और स्वयं को दूसरों से तुलना करने जैसी अनेक परिस्थितियाँ उसके मन पर प्रभाव डाल सकती हैं।

ऐसे में शिक्षक का एक छोटा-सा वाक्य भी विद्यार्थी के भीतर बड़ा परिवर्तन ला सकता है—

"गलती हुई है तो कोई बात नहीं, चलो इसे समझते हैं और दोबारा प्रयास करते हैं।"

शिक्षक यदि केवल अंक देखने लगेगा तो विद्यार्थी एक संख्या बन जाएगा। लेकिन यदि वह विद्यार्थी की प्रतिभा, कमजोरी, रुचि और प्रयास को भी देखेगा तो वह एक व्यक्तित्व का निर्माण करेगा।

अनुशासन जरूरी है, लेकिन डर नहीं...

यह कहना गलत होगा कि आज की पीढ़ी को अनुशासन की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है— और शायद पहले से अधिक है।

लेकिन अनुशासन का अर्थ भय नहीं होना चाहिए।

एक शिक्षक का प्रभाव डॉट की आवाज से नहीं, बल्कि उसके व्यक्तित्व और व्यवहार से अधिक बनता है। जब शिक्षक स्वयं समय का सम्मान करता है, ईमानदारी से काम करता है, दूसरों की बात सुनता है और गलती होने पर उसे स्वीकार करता है, तब विद्यार्थी बिना उपदेश के बहुत कुछ सीखता है।

बच्चे शिक्षक की बातें कम और उसका आचरण अधिक याद रखते हैं।

शिक्षक भी सीखें—यह समय की माँग है

आज शिक्षा केवल विद्यार्थियों के बदलने की कहानी नहीं है। शिक्षक को भी निरंतर सीखना होगा।

नई तकनीक, नए शिक्षण तरीके, डिजिटल संसाधन, एआई और बदलती सामाजिक परिस्थितियाँ—इनसे परिचित रहना आवश्यक है।

इसका अर्थ यह नहीं कि शिक्षक अपनी परंपरागत भूमिका छोड़ दे। बल्कि उसे अपनी भूमिका को और व्यापक बनाना है।

कल का शिक्षक कहता था—

"मैं तुम्हें जान दूँगा।"

आज का शिक्षक कहे—

"मैं तुम्हें ज्ञान खोजने, समझने और परखने की कला सिखाऊँगा।"

आखिर शिक्षक की सबसे बड़ी भूमिका क्या है?

शायद आज भी शिक्षक की सबसे बड़ी भूमिका वही है जो सदियों से रही है—**मनुष्य बनाना।

अच्छे अंक, अच्छी नौकरी और सफल करियर जीवन के महत्वपूर्ण हिस्से हैं, लेकिन शिक्षा का अंतिम उद्देश्य केवल इतना नहीं हो सकता।

शिक्षक को विद्यार्थी में प्रश्न करने की क्षमता के साथ उत्तरदायित्व, स्वतंत्रता के साथ अनुशासन, सफलता के साथ विनम्रता और तकनीक के साथ मानवीय संवेदना भी विकसित करनी होगी।

जेन Z को ऐसा शिक्षक नहीं चाहिए जो उसके हाथ से मोबाइल छीन ले।

उसे ऐसा शिक्षक चाहिए जो कहे—

"मोबाइल तुम्हारे हाथ में है, लेकिन दिशा तुम्हारे विवेक में होनी चाहिए।"

उसे ऐसा शिक्षक चाहिए जो उसकी उड़ान रोकने के बजाय उसे यह समझाए कि आकाश कितना भी बड़ा क्यों न हो, दिशा का ज्ञान जरूरी है।

हर पीढ़ी अपने समय की संतान होती है। आज की जेन Z को उसकी आदतों के लिए कोसना आसान है, लेकिन उसे समझाना, उसकी ऊर्जा को सही दिशा देना और उसकी जिज्ञासा को ज्ञान में बदलना ही वास्तविक चुनौती है।

शिक्षक और विद्यार्थी के बीच का रिश्ता बदल रहा है, समाप्त नहीं हो रहा।

किताब बदल सकती है, ब्लैकबोर्ड स्मार्ट बोर्ड बन सकता है, कक्षा डिजिटल हो सकती है और एआई लाखों उत्तर दे सकता है—लेकिन **एक विद्यार्थी के भीतर सही प्रश्न जगाने वाला और उसके चरित्र को दिशा देने वाला संवेदनशील शिक्षक आज भी अनिवार्य है।**

क्योंकि मशीनें ज्ञान दे सकती हैं,

पर ज्ञान का विवेक, जीवन का मूल्य और

मनुष्य होने की गरिमा—

ये शिक्षक ही सिखाता है।



डॉ. दर्विंदर कौर होरा
साहित्यकार
इंदौर, म.प्र.



अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

सृजक-सृजन समीक्षा रविवारिय केंद्रीय रचनाकार विशेषांक

आज अन्तरा शब्दशक्ति के पटल पर **किरण मोर**, कटनी (म.प्र.) का परिचय एवं उनकी **पाँच रचनाएँ** पाठकों की समीक्षा एवं विचारार्थ प्रस्तुत हैं।

★ **किरण मोर** ★ की प्रस्तुत रचनाओं में जीवन के अनुभवों से उपजी संवेदना, आत्मचिंतन, संघर्ष के प्रति सजग दृष्टि, सामाजिक विसंगतियों के प्रति आक्रोश तथा प्रेम और आशा की कोमल अनुभूतियाँ एक साथ दिखाई देती हैं। उनकी रचनात्मकता का विशेष पक्ष यह है कि वे जीवन के अंधकार को स्वीकार करते हुए भी उससे निकलने के लिए मनुष्य को भीतर की शक्ति पहचानने का संदेश देती हैं।

इन रचनाओं में स्वयं से संवाद, समय का मूल्य, कर्म और प्रारब्ध, सामाजिक पतन, मानवीय रिश्तों की ऊष्मा तथा प्रेम की अनदेखी उपस्थिति जैसे विविध भाव-बिंदु उभरते हैं। भाषा सहज, भावप्रधान और गीतात्मक है तथा अधिकांश रचनाओं में लयात्मकता पाठक को बाँधे रखती है।

आप सभी सुधी पाठकों एवं साहित्यकारों से विनम्र अनुरोध है कि रचनाओं का गंभीरतापूर्वक अध्ययन कर अपनी निष्पक्ष, सारगर्भित एवं रचनात्मक समीक्षा अवश्य प्रदान करें। आपकी प्रतिक्रिया, सुझाव और मार्गदर्शन किसी भी रचनाकार के सृजन-पथ को नई दिशा और ऊर्जा प्रदान करते हैं।

शक्तिरता

- सामाजिक संस्थाओं में गतिविधियाँ, समाज सेवा,
- समाज में पदाधिकारी, मनन संस्था सदस्य,
- श्री गहोई वैश्य महिला समिति की पदाधिकारी,
- मध्य प्रदेश लेखिका संघ की वरिष्ठ सदस्य
- सुदर्शना लेडीज क्लब की सदस्य

प्रस्तुतकर्ता

डॉ. प्रीति समकित सुराना
संस्थापक एवं संपादक
अन्तरा शब्दशक्ति

सम्मान

- राष्ट्रीय कवि संगम, कविविग्री प्रकोष्ठ
- यूमेन आवाज सम्मान
- हिन्दी कलमकार सम्मान
- साहित्यकार स्वाभिमान सम्मान
- अंतरा शब्द शक्ति गौरव सम्मान
- म.प्र. हिन्दी वरिष्ठ लेखिका सम्मान
- सशक्त नारी सम्मान
- सशक्त हस्ताक्षर सम्मान, भाव निर्झरी, इत्यादि।

प्रकाशन

- श्रेष्ठ काव्य संग्रह (साझा संकलन)
- जे एम डी प्रकाशन, दिल्ली
- शुभ प्रभात पत्रिका (साझा संकलन) सागर
- सृजन समीक्षा (काव्य संग्रह) अंतरा शब्द शक्ति
- सपनों का भँवर (एकल काव्य संग्रह)
- अंतरा प्रकाशन
- बदलते अक्स (एकल काव्य संग्रह)
- दिल ही दर्पण है (एकल काव्य संग्रह)
- संस्कारों का हवनकुंड (आलेख संग्रह)

रचनाएँ

1 उधार की जिंदगी

जंग जिन्दगी की हम तब खुद ही हार जाते हैं
दूजे की बुलंदी देख नैनो में अपने खार लाते हैं

ये ऐसा, वो बैसा, देखो तो
है कितना पैसा
अपने सुख के पल ये कहने में ह वार जाते हैं

ऊँची भरता देखो उड़ान, किस्मत कितनी अच्छी है
अपना हुनर ही जल जलकर खुद मार जाते हैं।

अपनी नहीं जीते हैं हम, दूजों की
जिन्दगी
इसी उधापोह में खुद होते बेकार जाते हैं

जीवन की थारा है, सबको इसमें ही बहना
खुद के किनारे खोकर सहारे पार जाते हैं

देख रहे हैं कैसी स्वार्थी, ललचाई नज़रों से
कर्महीन हो जिन्दगी भर का खो ए प्यार जाते हैं।

मेहनत की खाते हैं, वे अपना मान साथ ले चलते
मोक्ष दरिया भवसागर का वो ही पार जाते हैं।

2 आत्मावलोकन

तुझमें बसी सुगंध कस्तूरी
पहचान स्वयं को ओ रे अभागे

क्यूं पीछे मन का मृग भागे।

रात सोयें कल हो ना हो,
सुंदर सपने पलकों पर तागे।

बहुत सो लिया वक्त गंवाया
आज अगर ये नींद न जागे।

वक्त की चिड़िया जो उड़ जाए
फिर काहे पछताने लागे।

किस्मत उसकी साथ है देती,
संग वक्त के चलता आगे।

खींचे अपनी ओर ओ मनवा
बंधे हुए हैं मोह के धागे।

3 प्रारब्ध

कहाँ तक ये मन के अंधेरे चलेंगे,
हैं तन सांसें तब तक ये फेरे चलेंगे

इन्हें काटना हमको खुद ही पड़ेगा,
ये संग अपने साँझ-ओ-सवेरे चलेंगे,

जीवन का दूजा ये पहल हमारा,
पग-पग पर तुझे ये तो पड़े चलेंगे।

चलो चलते दिल में लिए हौसले को,
ये लेकर उजासों के डेरे चलेंगे।

कमजोर तू पड़ा तो डरायेंगे तुम को,
खड़े तकते राहों को तेरी बहुतेरे चलेंगे।

ना घबराना मन अपना मजबूत कर ले,
लूटने को तेरा सब बन लूटेरे चलेंगे।

अंधेरों में तन्हा छोड़े परछाईं खुद की
उजालों में तेरे तुझको यूँ घेरे चलेंगे।

मेरा आत्मकथ

मेरे घर में बचपन से मैंने किताबों का संग्रह देखा है, रामायण तो सभी के घरों में होती ही है, उसके बाद पुराने समय में नारी अंक और कल्याण जैसी प्रतियाँ जो हर महीने घर में आती थीं, उसके बाद बाल पाठ्य के लिए तेनाली राम, चाचाचौधरी और साबू, चंपक, नंदन, चंदामामा, पिंकी और बिल्लू जैसी बाल पत्रिकाएं, खूब मजा आता था पढ़ने में, और नारी अंक की सती नारियों की कहानियाँ और वीरांगनाओं की गाथा दिल में जोश और ओज भर देती थीं, उसके बाद कुछ बड़े हुए तो उस समय लगभग 70 से 80 के दशक में लाइब्रेरी से उपन्यास किराए पर मिलती थी पढ़ने के लिए, अब उम्र छोटी थी तो उपन्यास पढ़ने पर पाबंदी थी और समय पर लौटना भी होता था, अतः कभी-कभार छुप कर पढ़ी एकाध उपन्यास, इतना अच्छा लगा कि लत सी लग गई, और फिर तो पढ़ने का ऐसा चस्का लगा कि बिना पढ़े, कुछ अच्छा नहीं लगा था, मन उसी में रखा रहता, जब तक कहानी का अंत नहीं होता।

इस तरह पढ़ने की शुरुआत हुई, लेकिन लिखने की शुरुआत कक्षा छठवीं से हुई, हालांकि वो अपने से 9, 10 साल बड़े भाई के लिए लिखा गया पत्र था, जो उनके घर से रूठ कर मुम्बई चले जाने पर मैंने उन्हें घर लौटकर आने के लिए लिखा था, लेकिन अब मेरी पठन की आदत के कारण या मेरे अंदर लेखन की रुचि होने के कारण, पता नहीं, लेकिन पत्र में शब्द शैली और संयोजन जो मैंने यानि छोटी बहन ने अपने से दस साल बड़े भाई को घर वापस लौटने को मजबूर कर दिया, और वो पत्र उनके मालिक जहाँ वो जाकर काम करने लगे थे, उन्होंने भी कहा कि तुम्हारी छोटी बहन ने बहुत अच्छा पत्र लिखा है, तुम्हें घर लौट जाना चाहिए, और उन्होंने घर लौटकर सबको बताया कि इसके पत्र की वजह से वो लौट आए हैं! उसके बाद फिर अन्य दूसरे बड़े भाईयों के बच्चों के लिए आवेदन पत्र, पत्र, निबंध पठित गद्यांश, विषयक निबंध और भी छोटी मोटी एप्लीकेशन लिखने लगी, उसके बाद अखबार में एक चित्र पर आधारित कहानी लिखी थी, उसपर प्रथम स्थान प्राप्त हुआ, जिससे लिखने की जिज्ञासा बलवती होती गई, लेकिन फिर मेरी शादी हो गई, फिर सबको पता है, घर, बच्चे, परिवार और समाज इन सबकी जिम्मेदारियों में उलझकर स्त्री अपने सपने ताक पर रख ही देती है, ये सभी की कहानी है, तो लगभग लेखन की बात मैं भूल ही चुकी थी, लेकिन बच्चों के बड़े होने और पढ़ाई के लिए बाहर जाने के बाद करने को ज्यादा कुछ नहीं था अतः यूँ ही मन की भावनाएँ पत्र पर उतार देती थी, जो भी घर में हुआ या कभी किसी बात से दुख हुआ, मनमुटाव या कोई बात बुरी लगी तो उसे मैं अपनी डायरी में लिखने लगी इससे मन थोड़ा-बहुत हल्का हो जाता, फिर ये रोज का काम बन गया, फुर्सत होते ही लिखने बैठ जाती, जब मोबाइल फोन हाथ में आया, धीरे धीरे चलाना सीखा, जाना, समझा और ये भी जाना कि किसी ग्रुप से जुड़कर लेखन को और बढ़ाया जा सकता है, और फिर म.प्र. लेखिका संघ की सदस्य बन गई, उसके माध्यम से अंतरा शब्द शक्ति से जुड़कर बहुत अच्छा लगा, तब से लेखन जारी है, जो आज भी आपके सामने है, तो लेखिका संघ की बहुत बहुत आभारी हूँ, जिसके माध्यम से मैं आज इस मुकाम पर हूँ, मेरे लेखन को गति मिली, और मैं किसी सम्मान का भी पात्र बन सकती हूँ ये बोध हुआ, नहीं तो एक साधारण घरेलू स्तर पर अपने दिन काट ही रही थी, अंतरा ने नित नव ऊँची उड़ान भरना सिखाया और प्रीति जी का सहयोग मिला, तो कुछ प्रकाशित पुस्तक भी हुई, जो अंतरा प्रकाशन की हैं, और भी सम्मान और उपलब्धियाँ मेरी झोली में आईं, जिसकी कभी कल्पना भी नहीं की थी, अंतरा की तहेदिल से शुक्रगुजार हूँ।

किरण मोर की प्रस्तुत रचनाओं से स्पष्ट होता है कि वे जीवन को संवेदना और आत्मचिंतन की दृष्टि से देखने वाली रचनाकार हैं। उनके लेखन में व्यक्तिगत अनुभूतियों के साथ सामाजिक यथार्थ और जीवन-मूल्यों की चिंता भी दिखाई देती है।

4 कलरुंग का सच

तेरी बनाई दुनिया में क्या-क्या ये हो रहा है
पग पग पे छला जाता इंसान रो रहा है।

अबलाएँ रो रही हैं अस्मत् के तार खोकर
कर रही है पाप कोई वो स्त्री जन्म लेकर
नन्हीं नन्हीं सी जानों का भंग कौमार्य हो रहा है।

नौनिहाल बिक रहे हैं वस्तु सा मोल लेकर
दासता में पिस रहा है मानव जनम को दोकर
इन्सान ही अब तो जैसे सामान ही रहा है।

है दिलों से प्रेम गायब, स्वार्थपरता पल रही है
करुणा नहीं किसी में अपनों को छल रही है
इंसानियत से इंसान नफरत के बीज बो रहा है।

इंसान हो रहा है हर अब दोहरे चेहरे वाला
सच को दबा के होता झूठों का बोलबाला
दानव सा कुंभकर्णी नींद में सच सो रहा है।

तेरी लाठी बेआवाज है पर जब तक ये पड़ेगी
सब लुट जाएगा किसी का दुनिया क्या न सहेगी
सच एक कदम चलता, सौ को ये झूठ
बढ़ रहा है।

इतना दिखा दिया है अब और क्या है बाकी
कब तक पिलाएगा तू बन के जाम ए साकी
दौलत का नशा पीकर जान भी इंसान खो रहा है।

क्यूँ तेरे आने की आहट न सुनाई देती अब तक
करना पड़ेगा तेरे अवतार का इंतजार कब तक
शैया पर शेषनाग की तेरा आराम हो रहा है।

5 क्षितिज सा

इस क्षितिज को देखकर कुछ याद आता है
सूर्य संध्या का मिलन कैसा लुभाता है
खो गई मैं उस मिलन की अभिव्यक्ति क्या करूँ
रोज मिलकर भी कभी ना स्पर्श पाता है।

कितना है अद्भुत नजारा, मेरा ही शायद दंश है,
मिल के भी जो मिल न सके
मअधुरा अकथ ये अंत है।

मेरे भीतर भी अधूरे मिलन का
साक्ष्य हो शायद तुम ही
मैं निशा की शीतल चांदनी,
और आग का हो गोला तुम

दिन भर जो तपकर लौट ते
पहने ये भगवा चोला तुम
रहती हर दिन फिर भी प्रतीक्षित
आँख भरकर देखने यामिनी,

हल्का वो स्पर्श पाकर
बन के तेरी कामिनी,
नख, शिखों तक जगमगाती
भोर फिर तेरी बन्ने पथ गामिनी।

किरण मोर कटनी, म.प्र.
दो लाइन अंतरा के लिए - - -

अंतरा से जुड़कर ही मैंने
पाए पंख और परवाज
हौसला और साथी मिले
उड़ चली मैं आकाश।

-किरण मोर
कटनी म.प्र.

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

राम मंदिर न्यास में नए नेतृत्व से नई उम्मीदें

अयोध्या स्थित श्रीराम जन्मभूमि मंदिर आज केवल एक धार्मिक स्थल नहीं, बल्कि करोड़ों भारतीयों की आस्था, श्रद्धा और सांस्कृतिक चेतना का प्रमुख केंद्र बन चुका है। भव्य मंदिर के निर्माण के बाद अब उसके सुचारू संचालन, श्रद्धालुओं की सुविधाओं, सुरक्षा, वित्तीय पारदर्शिता और भविष्य की योजनाओं पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। ऐसे समय में श्रीराम जन्मभूमि तीर्थ क्षेत्र न्यास के नए मुख्य कार्यकारी अधिकारी के रूप में जितेंद्र मिश्र की नियुक्ति महत्वपूर्ण मानी जा रही है।

बिहार के एक सीमावर्ती ग्रामीण परिवेश से निकलकर इतनी बड़ी राष्ट्रीय जिम्मेदारी तक पहुंचना अपने आप में प्रेरणादायक है। यह नियुक्ति इस विचार को बल देती है कि नेतृत्व की पहचान केवल बड़े शहर, प्रभावशाली पृष्ठभूमि या संसाधनों से नहीं होती। योग्यता, अनुभव, परिश्रम और जमीनी परिस्थितियों की समझ भी किसी व्यक्ति को महत्वपूर्ण दायित्व संभालने योग्य बनाती है। देश के दूरदराज क्षेत्रों में रहने वाले युवाओं के लिए यह यात्रा निश्चित रूप से उत्साह और विश्वास का संदेश देती है।

बिहार और अयोध्या का संबंध भारतीय संस्कृति में अत्यंत पुराना और आत्मीय है। मिथिला माता सीता की जन्मभूमि है और अयोध्या भगवान राम की जन्मभूमि। राम और सीता का संबंध भारतीय जनमानस में दोनों क्षेत्रों को एक सांस्कृतिक सूत्र में जोड़ता है। ऐसे में बिहार से जुड़े व्यक्ति का राम मंदिर न्यास के शीर्ष प्रशासनिक दायित्व तक पहुंचना इस पुराने सांस्कृतिक संबंध को एक नया आयाम देता है।

मंदिर के सामने अब सबसे बड़ी चुनौती विशाल संख्या में आने वाले श्रद्धालुओं को व्यवस्थित और सम्मानजनक सुविधाएं उपलब्ध कराना है। दर्शन व्यवस्था, स्वच्छता, पेयजल, चिकित्सा, सुरक्षा, आवागमन और विश्राम जैसी आवश्यकताओं को निरंतर बेहतर बनाना होगा। इसके साथ ही देश और विदेश से आने वाले दान की पारदर्शी व्यवस्था भी अत्यंत महत्वपूर्ण होगी। श्रद्धालुओं का विश्वास केवल धार्मिक भावना से नहीं, बल्कि प्रशासन की ईमानदारी और जवाबदेही से भी मजबूत होता है।

अयोध्या को विश्व के प्रमुख आध्यात्मिक केंद्रों में विकसित करने की दिशा में स्थानीय लोगों के हितों को भी प्राथमिकता देनी होगी। रोजगार, छोटे व्यापार, हस्तशिल्प, स्वच्छता और पर्यावरण संरक्षण को मंदिर से जुड़े विकास का हिस्सा बनाया जाना चाहिए। मंदिर की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जिसमें सामान्य श्रद्धालु को भी उतना ही सम्मान और आत्मीयता मिले जितना किसी विशिष्ट अतिथि को।

भगवान राम के जीवन का मूल संदेश समरसता, करुणा और समानता है। उन्होंने समाज के उपेक्षित और साधारण लोगों को भी सम्मान दिया। इसलिए राम मंदिर का प्रशासन भी इन्हीं मूल्यों को व्यवहार में उतारने वाला होना चाहिए। यदि नई व्यवस्था आधुनिक तकनीक, पारदर्शिता, संवेदनशीलता और सामाजिक उत्तरदायित्व को साथ लेकर आगे बढ़ती है, तो अयोध्या केवल आस्था का केंद्र ही नहीं, बल्कि उत्कृष्ट प्रशासन का उदाहरण भी बन सकती है।

जितेंद्र मिश्र की नियुक्ति की वास्तविक सफलता आने वाले समय में उनके कार्यों से तय होगी। फिलहाल यह निर्णय इस उम्मीद को जन्म देता है कि राम मंदिर का संचालन ऐसी व्यवस्था के साथ आगे बढ़ेगा जिसमें परंपरा और आधुनिकता, आस्था और प्रशासन तथा विकास और जनसेवा के बीच संतुलन कायम हो। यही अयोध्या के उज्ज्वल भविष्य की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

महेन्द्र तिवारी



गीत

अमर प्रेम है तेरा मेरा, तू कृष्णा मैं तेरी मीरा।।
तू सागर में तेरी सरिता, तू ही संध्या तू ही सवेरा।।

जन्म जन्म का ये है नाता, तेरे बिन न कुछ भी भाता।।
तुम गीतों की राग अगर हो, मैं सुरमई हिय की हूँ पीरा।।
अमर प्रेम है तेरा मेरा.....

जैसे सिय से राघव का है, श्याम राधिका से है नाता।।
वैसे मेरे मन के तुम गिरधर, तुमसे ही है जीवन का बसेरा
अमर प्रेम है.....

तुम ही मेरे गीत गजल हो, छंद बन्द ओ कविता हो ।।
शब्दों में शक्ति है तुमसे, रचना तुम ही मेरे कबीरा।।
अमर प्रेम है

डॉ बबिताचौबे शक्ति



गज़ल

मुझसे उसका नाम बड़ा है। उसको डर है खो जाने का,
मुझको इससे लेना क्या है। जिसको ज़्यादा साथ मिला है।

जीत हमेशा होगी उसकी, साथ हमारे दूर सफ़र में,
अफ़वाहों से कौन डरा है। कौन पराया कौन सगा है।

वो कैसे बिल्ली पालेगा, सबकी अपनी-अपनी हस्ती,
जिसने तोता पाल रखा है। अपना-अपना फ़न, रुतबा है।

पहले ही तासीर है कड़वी,
और करेला नीम चढ़ा है।

भूख मिटेगी किससे किसकी,
दाने-दाने पर लिखवा है।

नवीन माथुर पंचोली



अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

"मैं खुद को रोज़ जन्म देती हूँ"

मिट्टी से सनी, खून से लथपथ...
मैं हर सुबह खुद को गोद में लेती हूँ।

रात भर तिरस्कार की धुंध में,
जो मैं मर गई थी...
उसे भोर की पहली किरण से,
मैं फिर से सांस देती हूँ।

कोई तालियां नहीं बजाता,
कोई बधाई नहीं देता।
क्योंकि ये प्रसव चुपचाप होता है...
चार दीवारों के बीच,
अपने ही आंसुओं की नर्सरी में।

गिरती हूँ कल,
उठती हूँ आज,
और संभालती हूँ कल को।

क्योंकि डूबना मेरे बस की बात नहीं।
मैं खुद को रोज़ जन्म देती हूँ...

ताकि मेरे अपनों का, मेरे सपनों का घर
कभी उजाड़ न हो।
महकता हुआ, मैं देखती रहूँ।

जीवित होकर भी चीखती हूँ,
मौन रहकर भी।
नहीं दिखाती पीड़ा किसी को,
अपने हिस्से की।

क्योंकि मैं मां हूँ खुद की उम्मीदों की,
हौसलों की,
खुद के जीवन की जन्मदात्री।

मैं मां हूँ अपनी खुद की।
मैं शक्ति हूँ अपनी खुद की।



साधना छिरोल्या

विचार: मानव मनका दब्द

स्थान: एक सुनसान घाट का किनारा। रात का समय। सिद्धार्थ टकटकी लगाए नदी की ओर देख रहा है। अचानक पीछे से एक विरक्त करने वाली हँसी गूँजती है। अघोर बाबा या एक उन्मत्त दार्शनिक पात्र - 'अनन्त' प्रकट होता है।

सिद्धार्थ: (खुद से बुदबुदाते हुए) इस निरंतर दर्द से तो मर जाना ही बेहतर होगा। या फिर यह दिमाग ही फिर जाए!

अनन्त: (पास आकर छाता घुमाते हुए हँसता है) मृत्यु या पागलपन? वाह! चुनाव तो बहुत गहरा है, छोटे!

सिद्धार्थ: (चौंककर) आप कौन हैं? और इसमें हँसने वाली क्या बात है? जिंदगी खत्म होने की कगार पर है।

अनन्त: जिंदगी खत्म नहीं हुई है, केवल तुम्हारे तर्क खत्म हुए हैं। बताओ तो, इन दोनों में तुम्हें कौन सा बेहतर लगा?

सिद्धार्थ: (हताश होते हुए) मर जाना ही बेहतर होगा। कम से कम यह चेतना, यह दर्द, यह अपमान... सबका हमेशा के लिए अंत तो होगा।
अनन्त: मृत्यु? मृत्यु तो पूर्ण विराम है, छोटे। वहाँ न तो दर्द है, और न ही दर्द खत्म होने का एहसास! वह तो शून्यता है। संभावनाओं के सारे दरवाजे बंद।

सिद्धार्थ: और पागलपन? पागल होकर इंसान हँसी का पात्र बनता है, सड़क पर नंगे घूमता है। उससे तो मर जाना ही बेहतर नहीं है क्या?
अनन्त: (गंभीर होते हुए) नहीं। समाज के बनाए नकली नियमों, अपेक्षाओं और मर्यादा की जंजीरों को तोड़ना ही 'पागलपन' है। पागल होना चेतना की मृत्यु नहीं, चेतना की परम स्वतंत्रता है।

सिद्धार्थ: (आश्चर्यचकित होकर) स्वतंत्रता? कैसे?

अनन्त: जब तुम पागल होते हो, तुम्हें कल की चिंता नहीं रहती, बीते कल का पछतावा नहीं होता। कोई क्या कहेगा, इसका डर गायब हो जाता है। मृत्यु तुम्हें खत्म कर देती है, लेकिन उन्माद तुम्हें इस क्रूर संसार से बचाकर तुम्हारे अपने आंतरिक सत्य में जीने देता है।

सिद्धार्थ: (नदी के पानी की ओर देखते हुए) यानी... मृत्यु पलायन है, और पागलपन विद्रोह?

अनन्त: बिल्कुल! मृत्यु निरपेक्ष शून्यता है, लेकिन पागलपन इस दुनिया के दिखावेपन पर किया गया एक बड़ा व्यंग्य है।

सिद्धार्थ: (गहरी साँस लेता है, उसके चेहरे का तनाव गायब हो जाता है। वह धीरे-धीरे हँसने लगता है।)

अनन्त: (मुस्कराते हुए) क्या हुआ? क्यों हँस रहे हो?

सिद्धार्थ: (आकाश की ओर हाथ फैलाते हुए) बधाई हो अनन्त जी, आज से मैं भी इस ज्ञानी दुनिया की नज़र में 'पागल' हो गया।
(सिद्धार्थ नदी के किनारे-किनारे ज़ोर-ज़ोर से हँसते हुए, हवा के साथ नाचते हुए आगे बढ़ता है। अनन्त उसे देखकर मुस्कराता रहता है।)

योगी
नारायण
नाथ

बेटियाँ संजा गीत गाती हैं

डगर-डगर चली बिटिया
गुनगुनाते हुए संजा गीत
जो उसने सीखे थे माँ से
रच-बस चुके थे सांसों में
हर त्योहारों के मीठे गीत

सखिया बन जाती कोरस
स्वर मुखरित हो उठते तो
कोयल कूक हो जाती फीकी
ठहर जाते लोगों के भी पग
कह उठते कितना अच्छा गाती।

बेटियाँ अब कम हो जाने से
हो गये हैं त्योहार भी फीके
गीत होने लगे आँगन से गुम
बेटे त्योहारों पर गीत बजाते
सुनने को अब पग कहा रुक पाते।

संजा गीतों और बेटियों को
जब सब मिलकर बचाएंगे
सुने आँगन फिर सज जायेंगे
सुर करेंगे हवाओं से दोस्ती
बोल कानों में मिश्री घोल जायेंगे।



संजय वर्मा 'दृष्टि'



समय का चक्र

समय का चक्र
पत्तियाँ सूख जाएंगी,
धीरे धीरे झर जाएंगी शाखाओं से।
फिर जाएंगी नई कोपलें।
धुंधले हो जाएंगे शब्द,
मिट जाएंगी किताबें।
गुम जाएंगी पहचाने,
मिट जायेंगे निशान।
जमींदोज होगी इमारतें,
जहां है आज चहलपहल।
भर जाएंगी हमारी जगह,
जैसे बूँदें भर देती हैं सूखी जमीन।
समय की धुंध में खो जाएगा नाम,
बस रह जाएगी यादें
वो भी तनिक समय।
फिर बनेगी नई पीढ़ी
और दोहराएगी अपना इतिहास।



अबरार खान



अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

नेपाल त्रासदी

मैंने देखे हैं—

बिना बादल के भी बरसते हुए आँसू
नेपाल की जल प्लावित धरती पर।
जब प्रकृति ने धारण किया रौद्र रूप,
आँखों में ठहरा भयानक मंजर।
सिसकते बच्चे,
पथराई आँखें,
अपनों को ढूँढती नजरें,
धरती का कण-कण काँप उठा।

मैंने देखे हैं—

हँसता खेलता जीवन,
एक पल में थम-सा गया,
पर्वतों की गोद में बस्ती,
वह सुन्दर-सी मानव बस्ती,
क्षण भर में मलबे में बदली,
बिखर गयी जीवन की हस्ती।

बड़ा भयानक है प्रकृति का ये कहर,
देखकर सबकी रूह काँप जाती है।
मैंने सुना था-खूबसूरत होती है प्रकृति,
आँखों को लुभाते हैं-झील, झरने, पर्वत।

वही खूबसूरत प्रकृति हुई विकराल,
वही सौंदर्य बना करुणा कलित हाहाकार।
प्रकृति जो पोषण करती है मानव का,
पल में सब कुछ छीन भी लेती है मानव से।
उस करुण दृश्य को देखकर,
आँखें नम हो जाती हैं।
जब अपनों को खोने की पीड़ा,
हृदय की गहराई तक जाती है।

ये कविता केवल शब्दों से बनी पंक्तियाँ नहीं हैं,
उन पीड़ित लोगों के हृदय से निकली आग है,
जो सदियों तक लोगों के हृदय में धधकती रहेगी।

प्रकृति इतिहास दोहराती है,
जानी पहचानी कहानी-सी,
महाप्रलय की याद दिलाती सी,
जयशंकर प्रसाद की कामायनी-सी।



मौसमी मेहरा

तुलसी का बिरवा

छोटी सी झोपड़ी से बड़ी हवेली में आई श्यामा खाली हाँथ आई थी,

सब पूछते अपने साथ क्या लाई हो, जेवर कपड़े कुछ लाई हो या बस खाली हाँथ हिलाते चली आई, वैसे कुछ भी कहो ठकुराइन तुम्हारी
बहु है बड़ी खूबसूरत तभी तो तुम्हारे बिरवा को मोह लिया।

अरे अरे !! काकी बार बार काहे कहती हो खाली हाँथ आई है छुटकी लाई है ना आपन साथ तुलसी के बिरवा कितना सुन्दर
लागत है खुसबू देखो कितना अच्छा महक है, है की नहीं, जितनी खूबसूरत है छोटकी उतने ही संस्कारी भी अरे धन दौलत की कोनव
कमी है का।

बड़की भौजाई का साथ पा कर श्यामा ने राहत की सांस ली हवेली के दम घुटने वाले माहौल में उनके शहर जाने के बाद
उसका साथ लाया तुलसी का बिरवा ही तो उसका सुख दुख का साथी था। राजेश तो शादी के कुछ दिनों बाद परीक्षा की तैयारी के लिए
वापस शहर चले गया पढ़ाई में खलल ना पड़े इसलिए बहु को साथ नहीं भेजा। पुराने ख्यालात की गाँव की रुक्मिणी को ये प्रेम विवाह
रास ना आया उन्हें लगता की श्यामा ने पैसे के लिए फंसाया है वो उसे अच्छी लड़की ना समझती।

बेचारी श्यामा अपना सा मुँह लिए रह जाती कर भी क्या सकती थी, उन्हें खुश करने का हर प्रयास विफल हो जाता। हवेली के
नौकर भी बड़ी मालकिन के डर से उससे दूर ही रहते, ये तुलसी का बिरवा ही उसका दोस्त नाते रिश्तेदार सब कुछ था सुबह शुरुआत
उसे जल चढ़ा कर धूप बत्ती करती पूरे भाव से उनकी सेवा करती कभी मन भर आता तो चुप चाप आँसू बहाती मगर कोई शिकायत ना
करती, हमेशा पूजा के बाद श्यामा तुलसी जी की परिक्रमा करते एक ही बात दोहराती है तुलसी के बिरवा सदा सुहागन रखना, इतना
अच्छा ससुराल, माता पिता से साससुर बहन भाई से जेठ जिठानी दिए उसके लिए जितना धन्यवाद करू कम है सदैव अपना आशीर्वाद
बनाए रखना, मेरे घर आंगन की शोभा बनाए रखना, ऐसी ही महकती रहना अपनी खुशबू से हमारे जीवन को महकाती रहना
धीरे धीरे उसकी प्रार्थनाएँ फलीफभूत होने लगीं, रुक्मिणी का दिल उसकी तरफ से साफ हो गया और उसे हवेली में छोटी बहु का
सन्मान मिलने लगा।

राजेश की पढ़ाई पूरी हो गयी थी अब वो श्यामा को साथ ले जाने की जिद
कर रहा था, लेकिन श्यामा अब हवेली की धड़कन बन गयी थी, कोई नहीं
चाहता था की श्यामा शहर जाए, मगर अब ये मुमकिन नहीं था तो तय हुआ
की माता पिता भी बच्चों के साथ शहर जायेंगे गाँव का काम बीच बीच में आ
कर देखते रहेंगे, आज श्यामा हवेली से जा रही है खाली हाँथ,,नहीं साथ में
है उसका लहलहाता तुलसी का बिरवा और उसका पूरा परिवार।



स्मृति गुप्ता

अन्तरा शब्दशक्ति
प्रकाशन

कलम की शक्ति, समाज की दिशा

एक लेख प्रतियोगिता

समसामयिक प्रश्नों पर आपकी कलम

समय सीमा 11 से 18 सितंबर

शब्द सीमा 4000 - 4500 शब्द

विषय (स्वेच्छा से)

वर्तमान में सबसे बड़ी और विकराल समस्या क्या है, जो आपकी
व्यक्तिगत भी हो सकती है?

सम्मान एवं प्रकाशन

- ✓ पर सम्मान प्रदान प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्थान किए जाएंगे।
- ✓ सभी प्रतिभागियों को प्रमाणपत्र दिए जाएंगे।
- ✓ सभी पुस्तकें पीडीएफ रूप में बनाई जाएंगी।
- ✓ सभी रचनाएँ पेपर पर होंगी तथा मैगज़ीन में भी प्रकाशित की जाएंगी।


 रचनाएँ भेजें
9009423393
अंतिम तिथि
20/09/2026

आयोजक

डॉ. प्रीति समकित सुराना
संस्थापक - अन्तरा शब्दशक्ति

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

प्रमदा

सरिता सलिल हो तुम
कामायनी स्वप्निल हो तुम
अभीप्सित सुकृति धरा पर
शुचिता सादृश्य आरुशी हो तुम.

रक्तिम सौंदर्य प्रतिमा
यामिनी पूनम की,
हुलसित हृदय की कामना
प्रथम आलिंगन हो तुम.

नतमस्तक वितान भी
द्रवित- द्रवित कण -कण
निहार तुझे अवाक रहे
नीरनिधि और कुसुम .

सौंदर्य प्रतिमा शिव की
ऋचा अनिमिष प्राण ,
किसलय स्नेह का अनुपम
कौमुदी करे प्रणाम .

नम्रता सरन "सोना"



गज़ल

परखना मुझे, मेरा किरदार पढ़ना,
समझकर मुझे मेरे सरकार पढ़ना।

मुहब्बत की बातें इशारों में समझो,
लिखुं मैं जो इनकार, इकरार पढ़ना।

सियासत, दगा, कल्ल और छेड़खानी,
पुरानी हैं खबरें, न अखबार पढ़ना।

लिखीं हो हरिक सिम्त जब नफ़रतें ही,
मुहब्बत, यही लफ़्ज़ हर बार पढ़ना।

समझती है दुनिया ये आसान जितना,
कठिन मुझको उतना मेरे यार पढ़ना।

नहीं जो समझ एक बारी में आए,
गज़ल जय की है इसको दो बार पढ़ना।



जयकृष्ण चांडक 'जय'



जहाँ लौट सकें आँसू

बेटी को विदा करते समय
उसका हाथ
दामाद के हाथ में जरूर सौंपिए
पर इतना याद रखिए...
हाथ छोड़ा जाता है
साथ नहीं

उसकी डोली
एक घर से दूसरे घर जाती है
पर उसका मन
अब भी आपके आँगन की
एक खिड़की खुली रखता है

वह जब नए रिश्तों में
अपने हिस्से की जगह खोज रही
हो
तब उसके पीछे
एक विश्वास बनकर खड़े रहिए
ऐसी दीवार नहीं
जो उसके हर निर्णय पर
अपनी छाया डाल दे

जरूरत पड़े तो
उसे यह एहसास रहे...
मेरे अपने
अब भी मेरे साथ हैं
पर इतना भी नहीं
कि उसकी हर चुप्पी में
आपका हस्तक्षेप बोलने लगे

बेटियाँ
सहारे से मजबूत होती हैं
निगरानी से नहीं
उसे गिरने दीजिए
सीखने दीजिए
अपने छोटे-छोटे निर्णयों में
अपना संसार बुनने दीजिए
और जब कभी
उसकी आवाज़ काँपे
तो बिना प्रश्नों की भीड़ लगाए
बस इतना कहिए...
“बेटा! हम यहीं हैं”

यही तो
माँ-बाप होने की
सबसे कठिन साधना है...
बेटी को उड़ने देना
पर उसके लिए
आकाश बने रहना...



-डॉ. वन्दना गुप्ता



अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

प्राणवायु

प्राणवायु पर निर्भर हमारी आयु
यह सत्य कैसे मैं भूल जाऊं
वृक्षों से मिलती प्राणवायु
यह सत्य मैं कैसे भूल जाऊं
परोपकार का बदला मानव
क्यों उनका विनाश कर चुकाता
अपने हाथों पेड़ काटता
अपना विनाश खुद रचाता
संकट में अब जग के प्राण
प्राणवायु को तरसती अब सांस
काट दिए तुमने सब जंगल
तभी आया प्राणों को संकट
लग रहा लाशों का जमघट
अटकी सांसे मानव के घट घट
हां! हां! तुम्ही ने किया विकास
किया जीवनदाता पर कुठाराघात
क्यों रो रहे हो देख मृत्यु का पाश
प्राणवायु दाता की पीड़ा समझते तुम काश
तोड़ता जब जब मानव अपनी सीमा
दिखलाती तब-तब प्रकृति विनाश लीला



निरुपमा त्रिवेदी

चापलूसों का शहर

कहते हैं, एक शहर था जहाँ आईने बहुत कम बिकते थे।
लोगों को अपना चेहरा देखने की जरूरत ही नहीं पड़ती थी,
क्योंकि हर गली में कोई न कोई चापलूस मौजूद था, जो उन्हें
बता देता था कि वे कितने सुंदर, समझदार और महान हैं।
शहर में एक साहब थे। साहब का पद बड़ा था, इसलिए
उनका ज्ञान भी अपने-आप बड़ा मान लिया गया था। वे सुबह दफ्तर
पहुँचते तो चापलूस पहले से तैयार मिलते। “साहब, आज तो आप
बहुत स्मार्ट लग रहे हैं!” साहब खुश।
अगले दिन वही कुर्ता, वही जूते, वही चेहरा।
फिर आवाज आई— “साहब, आपकी सादगी तो कमाल है!”
साहब और खुश।
तीसरे दिन साहब ने एक ऐसी फाइल पर हस्ताक्षर कर दिए जिसे
उन्होंने खोला तक नहीं था। चापलूसों ने कहा—
“साहब का विज्ञान इतना दूर तक जाता है कि फाइल पढ़ने की जरूरत ही नहीं पड़ती।”
साहब ने पहली बार महसूस किया कि वे सचमुच बहुत बड़े आदमी हैं। कुछ दिनों बाद एक कर्मचारी ने हिम्मत करके कहा— “साहब,
यह फैसला गलत है।” कमरे में सन्नाटा छा गया। साहब ने पूछा, “तुम्हें लगता है मैं गलत हूँ?” कर्मचारी बोला, “जी।” साहब ने कहा,
“बाकी सबको क्या लगता है?” सारे चापलूस एक साथ बोले— “साहब कभी गलत हो ही नहीं सकते!” कर्मचारी ने सिर झुका लिया।
उस दिन के बाद वह कर्मचारी कम दिखाई देने लगा। और चापलूसों की संख्या बढ़ने लगी। अब साहब को हर बात पर वाहवाही
मिलने लगी।
साहब कविता लिखते—महाकवि। साहब भाषण देते—दार्शनिक। साहब फोटो खिंचवाते—करिश्माई व्यक्तित्व। साहब गलती करते—
दूरदर्शी प्रयोग। साहब किसी को डाँटते—अनुशासनप्रिया। और अगर किसी को बिना वजह निकाल देते— “साहब ने संगठन की सफाई
कर दी।” धीरे-धीरे साहब ने सच सुनना बंद कर दिया। एक दिन शहर में बड़ा संकट आया।
साहब ने अपने चापलूसों से पूछा— “बताओ, समस्या कितनी गंभीर है?” सब बोले— “कोई समस्या है ही नहीं, साहब।”
साहब मुस्कुराए। अगले दिन संकट और बढ़ गया। साहब ने फिर पूछा— “अब?” चापलूस बोले— “साहब, यह तो आपकी
लोकप्रियता देखकर विरोधियों की साजिश है।” साहब फिर मुस्कुराए। तीसरे दिन पूरा शहर परेशान था। साहब ने आईना मँगवाया।
आईना सामने रखा। कुछ देर अपने चेहरे को देखते रहे। फिर बोले— “आखिर मुझे सच बताएगा कौन?”
आईना चुप रहा। साहब ने गुस्से में आईना तोड़ दिया। बाहर खड़े चापलूसों ने तालियाँ बजाई—
“वाह साहब! क्या निर्णय लिया है!” और उस दिन शहर को समझ आया— चापलूस कभी राजा
को नहीं गिराता। वह पहले राजा को यह यकीन दिलाता है कि वह गिर ही नहीं सकता। फिर जब
राजा गिरता है, तो चापलूस अगला राजा ढूँढ़ लेता है। क्योंकि— चापलूस की कोई विचारधारा
नहीं होती, उसकी सिर्फ दिशा होती है— जहाँ सत्ता, वहाँ उसका सिर।



सोनिया अक्श

"मुट्ठी भर संवेदनाएँ"

पिछले कुछ दिनों से तबीयत कुछ नासाज़ चल रही थी। शरीर में वह चुस्ती नहीं थी और चेहरे पर भी थकान की हल्की-सी परत महसूस होने लगी थी। घर की दिनचर्या तो
जैसे-तैसे चल रही थी, मगर शायद मेरी आँखों और चेहरे ने वह सब कह दिया था, जिसे मैं शब्दों में कह नहीं रही थी। मेरी हाउस हेल्पर ने मेरी हालत को पढ़ लिया। आज
अचानक वह बड़ी आत्मीयता से बोली— “भाभी, तुम्हारे लिए पपीता लेकर आती हूँ... थोड़ी ताकत आ जाएगी।”
मैं मुस्कुरा दी और सहजता से कह दिया— “अरे नहीं, घर में सारे फल रखे हैं और मैंने अभी खाए भी हैं।” बात शायद वहीं समाप्त हो जानी चाहिए थी, लेकिन उसकी वह
छोटी-सी चिंता मेरे मन में कहीं गहरे उतर गई। कितनी अजीब बात है न—कभी-कभी अपनेपन के लिए बड़े शब्दों, रिश्तों या औपचारिकताओं की जरूरत नहीं होती। किसी
का यूँ ही पूछ लेना कि “तबीयत कैसी है?” भी मन को सहला जाता है। लेकिन उसकी ममता की वह कहानी अभी पूरी कहाँ हुई थी! कुछ देर बाद वह अपनी मुट्ठी में न जाने
क्या समेटे मेरे पास आई। उसने मुझे सीधे बैठने को कहा। मैं कुछ समझ पाती, उससे पहले ही वह मेरे सामने खड़ी होकर मेरी नज़र उतारने लगी। मैं अवाक उसे देखती रह
गई। उसकी मुट्ठी में कोई बड़ी चीज़ नहीं थी, नमक था लेकिन उसमें जो भाव था, वह बहुत बड़ा था—मेरे लिए चिंता, अपनापन, स्नेह और एक ऐसी निश्चल संवेदना, जिसका
कोई मूल्य नहीं लगाया जा सकता। उस क्षण लगा, रिश्ते हमेशा खून से नहीं बनते। कुछ रिश्ते रोज़मर्रा की छोटी-छोटी परवाहों से बनते हैं—
एक गिलास पानी पूछ लेने से, फल लाने की जिद करने से, माथे की थकान पढ़ लेने से और कभी चुपचाप नज़र उतार देने से।
मेरी आँखें नम थीं और मन भीतर तक भीग गया था। नमकीन सा पानी आँखों से बह गालों पर लुढ़क गया.. मैं सोचती रही—
जिसे हम अक्सर केवल “हाउस हेल्पर” कहकर पुकार देते हैं,
उसके भीतर भी तो उतना ही बड़ा दिल धड़कता है। शायद उससे भी बड़ा, क्योंकि उसके स्नेह में किसी अपेक्षा की मिलावट नहीं थी।
उसकी मुट्ठी में जो कुछ था, उससे मेरी नज़र उतरी या नहीं, यह तो नहीं जानती... लेकिन उसकी उस छोटी-सी मुट्ठी भर ममता ने मेरे मन
की सारी उदासी जरूर उतार दी। और उस दिन फिर महसूस हुआ— इंसान की कीमत उसके रिश्ते से नहीं, उसके संवेदनशील हृदय से
होती है। कुछ लोग जीवन में बहुत बड़े उपहार नहीं देते, बस एक छोटी-सी चिंता दे जाते हैं... और वही चिंता उम्र भर याद रह जाती है।



पदमा राजेन्द्र, इंदौर

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

80 का दशक लौटकर आए

अगर 80 के दशक में ही चले गए हो,
तो जाते-जाते एक काम करते जाना...
भाइयों का वो प्यार,
और संयुक्त परिवार की वो मिठास,
ज़रा अपने साथ फिर से लेते आना।

लेते आना वो घर,
जहाँ दरवाज़े कम थे,
पर दिलों में दीवारें नहीं थीं।

लेते आना वो आँगन,
जहाँ एक चूल्हे की रोटी
पूरे परिवार का पेट भर देती थी,
और एक थाली में बैठकर खाना
किसी को छोटा-बड़ा नहीं करता था।

लेते आना वो भाई,
जो खुद भूखा रहकर भी
छोटे भाई की थाली में
अपनी आखिरी रोटी रख देता था।

लेते आना वो बहनें,
जो मायके से विदा होकर भी
भाई की कलाई का इंतज़ार करती
थीं...

और वो भाई,
जो राखी बँधवाकर
खुद को पूरी दुनिया से अमीर समझता
था।

तब घर छोटे थे,
मगर रिश्ते बड़े थे...
पैसे कम थे,
मगर अपनापन बहुत था।

आज मकान बड़े हैं,
कमरे अलग हैं,
रसोई अलग है,
हिसाब अलग है...
बस पता नहीं क्यों,
दिलों के बीच का रास्ता भी
अलग हो गया है।

अब भाई के पास भाई का नंबर है,
लेकिन वक्त नहीं...

बहन के पास राखी है,
लेकिन मिलने का बहाना नहीं...

माँ के पास इंतज़ार है,
लेकिन बच्चों के पास
घर लौटने का समय नहीं...

और पिता की कुर्सी आज भी खाली है,
बस कोई पूछने वाला नहीं- “पापा, खाना
खा लिया?”

इसलिए...

अगर 80 के दशक में ही चले गए हो,
तो इस बार खाली हाथ मत लौटना।

थोड़ा-सा वो बचपन लेते आना,
थोड़ा-सा वो अपनापन,
थोड़ी-सी वो हँसी,
थोड़ा-सा वो भाईचारा...

और हाँ...

अगर हो सके,
तो वो संयुक्त परिवार भी लेते आना,
जिसमें लोग कम नहीं होते थे,
बस दिलों में जगह बहुत होती थी।

क्योंकि आज हमारे पास
सब कुछ है...

बस वो लोग नहीं हैं,
जिनके होने से
घर सच में घर लगता था।



एडवोकेट डी. के.
कनौजिया



अति सर्वत्र वर्जयेत्

आज का विषय आज के परिवेश पर एकदम सटीक बैठता है, मतलब हर तरफ अति ही अति दिखाई देती है, संतुलन कहीं नहीं, चाहे वह कोई भी विषय हो, यानी जीवन जीने की वो कला, जो आवश्यक तो है लेकिन एक संतुलित आकार में, आकार यानी यथार्थ कह सकते हैं, आवश्यक भी कह सकते हैं, जैसे खार यानी नमक का संतुलन, मिष्ठ यानी शक्कर का संतुलन, इसी तरह सबसे जरूरी व्यवहार का संतुलन, हर उस कार्य में जो जीवन से ताल्लुक रखते हैं, जीवन से मरण तक का सफर आज अनियमित हो गया है, कभी भी, कहीं भी, कैसे भी और किसी से भी, किसी के लिए भी, सब कुछ अति में हो गया है।

अति का मतलब सिर्फ अधिक नहीं है, कहीं कमी की भी अति हो जाती है, कहीं अधिक की अति, बिना जरूरत के, गर्मी की धूप, बारिश की मार, ठंड से बीमार, भूख से लाचार और ऐसे आज के परिप्रेक्ष्य में इंसान का व्यवहार, जो हर जगह, हर विषय में आज अति में ही प्रतिपादित हो रहा है।

जैसे सबसे पहला रिश्ते, जो आज सिर्फ औपचारिक रह गए हैं, इनमें बैलेंस नहीं बचा है, यानी निभाई जाने की आवश्यक गुण, जैसे सहना, सुनना, समझना, कहना सही-गलत, प्रेम, मान-सम्मान, इज्जत, छोटा-बड़ा, लिहाज, मान-मर्यादा, संस्कार, व्यवहार, करुणा, दया, ममता, इन सभी की कमी भी अति के ही प्रतिरूप हैं, आज के परिप्रेक्ष्य में, और इसको संतुलित करने की जो मूल भाव हैं, वह आत्ममुग्धता में सिमटकर उस पर माया, दिखावा, अहम, स्टेटस, स्वमहत्त्व और महत्वाकांक्षा, इन सब भावों का सम्मिश्रण होने के कारण संतुलित व्यवहार की व्यवस्था डगमगा गई है क्योंकि एक ही पलड़े में आकर सब बैठ गए हैं, और दूसरे पलड़े में बहुत कम, यानी प्रतिशत का आँकड़ा भी अति में, लगभग 80/20 का, बल्कि इससे भी अधिक हो शायद! और पलड़ा झुका है आत्ममुग्धता की तरफ।

वैसे तो आत्ममुग्ध होना भी जीवन कला की एक आवश्यक प्रक्रिया है, लेकिन अति आत्ममुग्ध होने में अकेलेपन का जो दंश आज लगभग हर व्यक्तित्व से जुड़ गया है, वह भी अति का ही स्वरूप कहा जा सकता है, और आज का सबसे जरूरी व्यवहार वह है माया का व्यवहार, जिसने सबको अपने लपेटे में ले रखा है, कहीं तो कोई चाहकर भी नहीं निकलपा रहा, कारण कथनी-करनी में भी मेल-मिलाप नहीं है, आज वो भी स्वयं की, और माया ने जकड़कर हर व्यवहार की अवस्था को अति की पराकाष्ठा को पार करा दिया है, अतः संसार जिस दलदल की ओर बढ़ रहा है, वह भले ही अभी दिखाई नहीं दे रहा, लेकिन जानकारी सभी को है, और सबको पता भी है अति सर्वत्र वर्जयेत्, लेकिन भेड़चाल की रफ्तार में चलने की मजबूरी शायद विवेक का द्वार बंद किए है।



किरण मोर,
कटनी, म.प्र.

तू नहीं है तेरा ख्याल नहीं!
ज़िंदगानी में अब बवाल नहीं!

जंग लड़ना मुझे गवारा पर!
बेबसों को बना के ढाल नहीं!

ऐसे लीडर को लानतें भेजो!
चल सका जो सियासी चाल नहीं!

पा लिया जो खुदा की रहमत थी!
खो दिया तो किया मलाल नहीं!

भूख का मसअला सुलझ जाए!
इतना सीधा भी ये सवाल नहीं!

ग़ज़ल



बलजीत सिंह बेनाम

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

मेरा मुन्ना आएका

सूली

घर में चारों तरफ खुशियों का माहौल पसरा है। आज सावित्री की बेटी नीना का विवाह जो है, सावित्री एक कोने में चुपचाप उदास मन से बैठी कुछ सोच रही थी, कि अब उसकी नीना कुछ पल की मेहमान है, फिर तो पराई हो जाएगी इससे कई गुना ज्यादा अपने बेटे मुन्ना की बातें उसे अंदर ही अंदर खाए जा रही थी। मुन्ना पहले कहा करता था अपनी माँ से कि तुम इन चारों बेटियों को इतना मत पढ़ाओ। m.a., B.Ed या कंप्यूटर कोर्स मत करवाओ। ये तो दूसरे के घर जाएगी पढ़ाने से हमें क्या लाभ होगा। सावित्री का दिल मुन्ना से उचट गया था। तभी बाहर से आवाज आती है- सावित्री बुआ बारात चौखट तक आ गई है।

फिर सभी रस्मों रिवाजों से नीना की शादी हो गई। सवेरा होते ही नीना ससुराल चली गई। कुछ दिन बाद सावित्री के घर में फिर वैसा ही कोहराम मचा हुआ था, मुन्ना का कहना था कि अब तीनों को मत पढ़ाओ, जितना पढ़ाना था पढ़ ली। इनकी भी अब शादी कर दो किंतु सावित्री का कहना था कि हम पढ़े-लिखे नहीं हैं लेकिन अपने बच्चे को जहां तक हो पाएगा वहां तक पढ़ाएंगे। वैसे वह मुन्ना से कुछ नहीं कहती, बस सुनकर आंसू बहा लेती थी। सावित्री और मिट्टू दास दोनों पति-पत्नी ने मिलकर मेहनत कर अपनी तीनों बेटियों और बेटा को पढ़ाया। कर्ज लेकर तीनों बेटियों की शादी की। शादी में लिए कर्ज दोनों पति-पत्नी ने पाई पाई चुका भी दिया ताकि कल दिन मुन्ना पर कहीं कोई बोझ रह ना जाए, किंतु मुन्ना अलग ही किस्म का लड़का था। एक दिन अपने पापा से कहने लगा- आप लोगों ने मेरे लिए क्या रखा है? सारा धन- दौलत तो उन बेटियों पर लुटा दिया, बात -ही -बात में मुन्ना ने अपने पिता पर हाथ भी उठा दिया और कहा तुम दोनों के लिए यह जगह नहीं है तुम दोनों अभी के अभी यहां से चले जाओ..... नहीं तो मैं धक्के मार कर निकाल दूंगा। मुन्ना सावित्री और मिट्टू दास को धकियाते-घसीटते वृद्धा आश्रम छोड़ आया, लेकिन जब मुन्ना आने लगा तो सावित्री भरे आंखों में आंसू लिए बोली.... बेटा अपना ख्याल रखना। लेकिन मुन्ना ने उन लोगों को पलट कर भी नहीं देखा। आज तक सावित्री इस इंतजार में बैठी है कि उसका बेटा उसे लेने जरूर आएगा। मिट्टू दास ने जहां इसे नियति समझ मौन धारण कर लिया है वहीं सावित्री पथराई आंखों से बाहर देखते अचानक बोल उठती है - मेरा मुन्ना आएगा...

राज कुमारी
गोड्डा, झारखण्ड

मुंबई के छत्रपति शिवाजी महाराज अंतर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे के टर्मिनल 2 से लियोनार्डो दा विंची, फियूमीसिनो के लिए उड़ान भरने के लिए विमान तैयार था। सराह, बेचैनी से प्रवेश द्वार पर आँखें गड़ाए थी लेकिन फादर हेनरी कहीं नज़र नहीं आ रहे थे। यात्रियों के लिए बोर्डिंग की अंतिम उद्घोषणा सुनकर, सराह आगे बढ़ने लगी तभी उसने फादर हेनरी को लगभग दौड़ते हुए अपनी तरफ आते देखा।

एयर होस्टेस उसे जल्दी आने का इशारा कर रही थी तभी फादर ने एक लिफाफा उसे थमाते हुए कहा, शुभ यात्रा मेरी बच्ची। तुम्हारे हर सवाल का जवाब इस लिफाफे के अन्दर बंद है। जाओ... गॉड ब्लेस यू...

रुके नहीं फादर। सराह तेज कदमों से विमान में आ गई। ड्यूटी स्टॉफ ने बोर्डिंग कम्प्लीट होने की सूचना दी और दरवाज़ा बंद हो गया। एक पल के लिए सराह को लगा, उस बंद दरवाज़े के उस तरफ उसकी ज़िन्दगी का वो हिस्सा छूट गया जिसपर अभी तक का हिसाब-किताब दर्ज था। सीट बेल्ट लगाकर उसने फादर के दिए लिफाफे को देखा। भूरे लिफाफे की तरह उसे अपनी ज़िन्दगी भी मटमैली लग रही थी। लिफाफा खुला था और बाईं ओर सेंट केथरीन चर्च, जोगेश्वरी वेस्ट की सील लगी थी।

चर्च और फादर हेनरी के बिना उसके जीवन की कहानी का आगाज़ भी नामुमकिन था। स्कूल की पढ़ाई पूरी होने के बाद उसका चयन, मेडिकल कॉलेज में हुआ था। चर्च वैसे तो बच्चियों की पढ़ाई में हर संभव मदद करता था लेकिन मेडिकल कॉलेज में 5 साल की पढ़ाई का खर्च सुनकर, फादर परेशान लग रहे थे। सराह, पैरा मेडिकल कोर्स करने का मन बना रही थी तभी, फादर ने उसके मेडिकल कॉलेज में फीस भरने की सूचना दी। सराह के सपनों को जैसे पंख लग गये। स्टूडेंट सेवशन में अपना पहचान पत्र लेने गई तो वहाँ मिलिंद पहले से मौजूद था। मिलिंद स्कूल से दोनों एक ही कक्षा में थे लेकिन बहुत कम बातचीत होती थी। मिलिंद, बड़े व्यावसायिक घराने से था और कार से आता था। सराह गर्ल्स होस्टल में रहकर पढ़ाई कर रही थी।

इंटरशिप के दौरान, ओपीडी में मरीजों को देखकर दवाई लिखने में जरूर वो मिलिंद से चर्चा कर लेती थी। जिस दिन एम. बी. बी. एस. की डिग्री मिली, मिलिंद ने बहुत बड़ी पार्टी रखी थी अपने घर पर। सभी दोस्तों के साथ कॉलेज स्टॉफ इकट्ठा था मिलिंद के बंगले के खूबसूरत लॉन में।

एक कोने में खड़े तन्हा बुत की गगरी से छलकते पानी को देखकर सराह उसके नज़दीक चली आई। उसे लगा, यह बुत भी उसी की तरह बिल्कुल अकेला है। वो अपने विचारों में खोई हुई थी तभी मिलिंद ने उससे पूछा, बोर हो रही हो क्या? कुछ ले भी नहीं रही हो और यहाँ अकेली खड़ी हो। उसने हँसकर बात टालनी चाही लेकिन मिलिंद ने कहा, वैसे बड़ी मुनासिब जगह चुनी है तुमने। वहाँ भीड़ भाड़ में, मुझे जो कहना है कभी नहीं कह सकता था। सराह जैसे चौंक गई। मुझसे क्या कहना है आपको? मिलिंद ने कुछ और करीब आकर कहा, आज हमने ज़िन्दगी में आगे बढ़ने के लिए पहली पायदान पार कर ली है। अब आगे के लिए सही रास्ता तलाशना है। अगर अनजान डगर पर दो लोग साथ चलें तो... मेरा मतलब है कि कोई साथ हो तो मंजिल आसानी से मिल सकती है। आगे के सफ़र में क्या तुम मेरी हमसफ़र बनना चाहोगी? मिलिंद के प्रस्ताव ने सराह को बुत बना दिया। शब्द जैसे मिल ही नहीं रहे थे उसे कुछ कहने के लिए। दोनों के दरमियान पसरे सन्नाटे को मिलिंद ने ही तोड़ा। तुम तो फ्रीज हो गई मेरी बात सुनकर। मैंने सिर्फ़ अपने दिल की बात कही है। अगर तुमको ऐतराज़ है तो साफ़ साफ़ कह दो। मैं तुम्हारे फ़ैसले का सम्मान करूँगा और स्वीकार भी... बस इतना चाहता हूँ कोई और रिश्ता रहे न रहे लेकिन हम हमेशा अच्छे दोस्त जरूर रहें। तुम सोचो, कोई जल्दी नहीं है मुझे। अगर मेरी बात सही लगे तो हाँ कहना नहीं तो...

मिलिंद, मेरे बारे में आप जानते ही क्या हैं? मैं अनाथ लड़की हूँ। फादर हेनरी की रहमदिली से इस जगह तक पहुँच सकी। आगे मैं चाहती हूँ, खुद भी ऐसे लोगों की मदद कर सकूँ जो मेरी तरह हैं। मैं चिकित्सा के क्षेत्र में ऐसा कुछ करना चाहती हूँ जिससे, उन लोगों को सुविधा मिल सके जो आज भी इलाज से महरूम हैं। बहुत बुरी स्थिति है सुदूर गाँवों में। ऐसे में बहुत मुश्किल है अपनी ज़िन्दगी के बारे में सोचना। मैंने फ़ैसला किया है मैं कभी शादी नहीं करूँगी। मेरे मिशन के साथ तो नाइंसाफी होगी ही बल्कि एक और ज़िन्दगी को बर्बाद करने जैसा होगा यह। मैंने फादर से कहा है, अगर वो रोम में मेरे पीजी करने और वेटिकन में सेवा की शपथ लेने में मदद कर सकें तो... मिलिंद, खामोशी से सुन रहा था सराह को। उसे नहीं पता था जिसे वो जीवनसाथी बनाना चाहता है उसने तो मानव सेवा का संकल्प लिया है। सराह के हाथ थामकर उसने कहा, मैं जिसे एक साधारण लड़की समझ रहा था, उसका कद मेरी सोच से कहीं ज्यादा बड़ा है। जो अपने लिए सूली चुनते हैं, उन्हें ही खुदा का दर्जा मिलता है। जैसा तुम सोच रही हो, वही होगा। तुम रोम से पीजी करके, पीड़ित मानवता की सेवा करना। इस काम में मैं अगर कुछ कर सकूँ तो समझूँगा, मेरा जीवन भी सार्थक हो गया। अब चलो, सभी दोस्त इंतज़ार कर रहे होंगे। एयर होस्टेस ने उसकी इच्छा जाननी चाही चाय-कॉफी या ठंडे के लिए तो वो अतीत की पगड़ियों से आज में वापस लौटी। कॉफी का घूँट भरकर, फादर का खत निकाला। लिखा था, माई चाइल्ड! अब तुम अपनी पसंद के मिशन के लिए उड़ान भर चुकी हो। परमात्मा तुम्हें हौसला और सफलता दे। जिस तरह आजतक तुम्हें वो मिला जो चाहा, आगे भी ऐसा ही होगा।

बस एक बात कहना जरूरी समझता हूँ। पता नहीं तुम्हारे लौटने तक मैं रहूँगा भी या नहीं इसलिए इस बोझ को अपने साथ नहीं ले जाना चाहता। तुम्हारी मेडिकल की बैचलर डिग्री से आगे होने वाली मास्टर्स डिग्री तक का खर्च मैंने नहीं उठाया है। सक्षम ही नहीं था मैं। उस ईश्वर ने तुम्हारी मदद के लिए जिस फरिश्ते को भेजा उसका नाम मिलिंद है। हालांकि उससे वादा किया था यह बात तुम पर जाहिर नहीं करूँगा लेकिन मेरी आत्मा इस बोझ को उठा नहीं सकेगी। वो हमेशा के लिए यूके जा रहा है। पता या सम्पर्क का कोई साधन नहीं है मेरे पास। तुम अपना ध्यान रखना और ईश्वर तुम्हें अपने मक़सद में कामयाब करेंगे। सराह की आँखों से आँसू बह रहे थे। फादर की आत्मा से मुक्त होता बोझ उसे अपने सीने में महसूस हो रहा था...

आँखें मूँदकर उसने प्रार्थना की, अपने-आप से कहा, मिलिंद तुमने बिल्कुल सही कहा था। जो सूली चुनते हैं, वही खुदा बनते हैं।

मुकेश दुबे
सिहोर (म.प्र.)

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

हिन्दी
दिवसहिन्दी की वर्तमान स्थिति :
सम्मान से आगे, सामर्थ्य की जरूरत

पाखंड की पाठशाला !

हिन्दी दिवस आते ही ग़ज़ब का पाखंड चारों तरफ होने लगता है। कहीं हिन्दी सप्ताह मनाया जाने लगता है, तो कहीं हूँद हूँदकर हिन्दी के विद्वानों को सम्मानित किया जाता है। हिन्दी के मास्साब खोजे जाने लगते हैं कि हिन्दी पर कुछ लिख दें, ताकि बच्चा स्कूल में भाषण देकर ट्रॉफी जीत सके।

और तो और, जिस हिन्दी को बोलने में शर्म महसूस करने वाले काले-पीले अंग्रेज़ साल भर हिन्दी से ऐसे कज़ी काटते हैं, मानो हिन्दी बोलते पकड़े गए तो उनकी प्रतिष्ठा जब्त हो जाएगी, वही हिन्दी दिवस पर हिन्दी की ऐसी-तैसी करने में कोई कसर नहीं छोड़ते। हिन्दी को अंग्रेज़ी में बोलने में वे बड़े उस्ताद होते हैं।

‘उस्ताद’ शब्द से एक मित्र याद आ गए। वे चाहते थे कि मैं कुछ भी लिखूँ, उसमें शुद्ध संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का ही उपयोग हो। कैसे समझाता उनको मैं गरीब-भाई, क्यों अपनी ही मातृभाषा का मज़ाक बनवाना?

जब रेल हिन्दी का ही शब्द हो गया, तो उसके लिए ‘लौह-पथ-गामिनी’ जैसा दुरूह और अव्यवहारिक शब्द गढ़ने की क्या जरूरत है? यह कोई एक शब्द नहीं है। ऐसे अनेक शब्द हैं, जो भाषा को समृद्ध करने के बजाय उसे आम आदमी से दूर कर देते हैं। भाषा का काम आदमी को चौकाना नहीं, समझाना है। लेकिन हमारे कुछ भाषा-ठेकेदारों को लगता है कि जितना कठिन शब्द, उतना बड़ा विद्वान। अभी उर्दू के नुक्ते को लेकर भी तथाकथित हिन्दी के ठेकेदारों ने विचित्र निर्णय सुना दिया कि हिन्दी में नुक्ता लगाने की जरूरत नहीं।

भारी बड़बोलों का राज है। भाई, हर जगह अपनी कैची मत चलाओ। जेब और जेब में फर्क है। जेब यानी पॉकेट और जेब यानी शोभा। नुक्ता हटा दिया तो अर्थ का ही अनर्थ हो जाएगा। ऐसे अनेक शब्द हैं जिनमें नुक्ता हटाते ही अर्थ बदल जाता है। भाषा बचाने के नाम पर भाषा के अर्थ की ही हत्या कर देना कौन-सी सेवा है?

हिन्दी के सिरमौर बने मूर्धन्य विद्वान हिन्दी की लाइन लंबी करने के चक्कर में ऐसे घनचक्कर हो जाते हैं कि तर्क करते-करते अपना अंग्रेज़ी भाषा का अज्ञान खुद ही परोस देते हैं। एक बड़ा तर्क सुनने को मिलता है – “अंग्रेज़ी में लिखते कुछ हैं और बोलते कुछ और।”

भाई, अपवाद किस भाषा में नहीं होते?

अपनी हिन्दी को ही लो। लिखते ‘कन्या’ हैं, बोलते ‘कन् निया’। चाचा हो, ताऊ हो, मामा हो—सबको एक ही लाठी से हॉकते हैं और अंग्रेज़ी के उच्चारण पर ज्ञान बाँटते हैं। अरे भैया, पोहा-जलेबी खाते-खाते थोड़ी अंग्रेज़ी भी पढ़ लो। वहाँ ‘अंकल’ के पहले ‘paterna’ और ‘maternal’ भी लगता है। और सुनो—आंटी-आंटी सुनकर हम बच्चे से बूढ़े हो चले, मगर अंग्रेज़ी में ‘आंटी’ शब्द है ही नहीं; वहाँ ‘aunt’ है।

लेकिन हिन्दी के स्वयंभू ठेकेदारों को इन बातों से क्या लेना-देना? उन्हें तो हिन्दी दिवस पर उद्घाटन भाषण, चाटन और समापन से ही फुर्सत नहीं होती।

हिन्दी प्रारंभ से ही जन-जन की भाषा रही है। उसने लोक से सीखा है, दूसरी भाषाओं से शब्द लिए हैं और समय के साथ अपना रूप बदला है। यही उसकी जीवंतता है। इसलिए बटुआ हिन्दी का शब्द है तो उसे कोई ‘धन-धारण-पात्र’ मत बना देना। रेल चल रही है तो उसे लौह-पथ-गामिनी बनाकर यात्री की परीक्षा मत लेना। बटुए को बटुआ और रेल को रेल ही रहने दो।

कुछ तो रहम करो!

इसके पहले कि हिन्दी चुटकुलों की भाषा बन जाए, होश में आ जाओ हिन्दी के सूरमाओं।

और हाँ, किसी हिन्दी दिवस के कार्यक्रम में उसका क्रियाकर्म तो मत करो। कम से कम हस्ताक्षर तो हिन्दी में कर दिया करो।

डॉक्टर की पढ़ाई में जोर-शोर से हिन्दी की किताबें छापी गईं। बड़ा शोर मचा—“हिन्दी पढ़कर भी डॉक्टर बन सकते हैं।” बिल्कुल बन सकते हैं। सवाल सिर्फ इतना है कि कितने विद्यार्थी वास्तव में हिन्दी माध्यम से चिकित्सा की पढ़ाई करने का विकल्प चुनते हैं? यह तो ओपन सीक्रेट है, भाई।

यानी भाषण में हिन्दी आत्मा है और करियर में अंग्रेज़ी सहारा।

यह विरोधाभास समझे बिना हिन्दी का उद्धार नहीं होने वाला।

हिन्दी को बचाने के लिए न तो साल में एक सप्ताह की जरूरत है, न मंच पर लंबी-लंबी शपथों की। उसे चाहिए रोज़मर्रा का इस्तेमाल, शिक्षा में सम्मान, तकनीक में जगह और सबसे बढ़कर—अपने ही बोलने वालों का आत्मविश्वास।

हिन्दी दिवस पर हिन्दी की आरती उतारना आसान है।

मुश्किल है अगले दिन भी हिन्दी में काम करना।

इसलिए हिन्दी के सूरमाओं से बस इतनी विनती है—उसे जन की भाषा रहने दीजिए। वरना एक दिन हिन्दी दिवस पर हिन्दी की तस्वीर पर माला चढ़ाकर हम बच्चों से कहेंगे—“बेटा, यह हिन्दी है। कभी लोग इसे बोला करते थे...”



कमलेश कंवल, उज्जैन

हिन्दी आज ऐसे दौर से गुजर रही है, जहाँ एक ओर उसके विस्तार की संभावनाएँ पहले से कहीं अधिक हैं, तो दूसरी ओर उसके सामने नई चुनौतियाँ भी खड़ी हैं। करोड़ों लोगों की अभिव्यक्ति और संवाद की भाषा होने के बावजूद हिन्दी को ज्ञान, विज्ञान, तकनीक और रोजगार के क्षेत्रों में अभी वह व्यापक स्थान नहीं मिल पाया है, जिसकी वह अधिकारी है। इसलिए आज सवाल केवल यह नहीं है कि हिन्दी कितनी बोली जाती है, बल्कि यह भी है कि हिन्दी में आधुनिक ज्ञान कितना उपलब्ध है।

डिजिटल क्रांति ने हिन्दी के विकास को नई गति दी है। समाचार-पोर्टल, सोशल मीडिया, ब्लॉग, वीडियो प्लेटफॉर्म और अन्य डिजिटल माध्यमों ने हिन्दी में अभिव्यक्ति के अवसरों को व्यापक बनाया है। अब हिन्दी में लिखी या कही गई सामग्री देश की सीमाओं से बाहर भी आसानी से पहुँच सकती है। युवाओं की बड़ी भागीदारी ने हिन्दी के डिजिटल स्वरूप को और मजबूत किया है।

फिर भी शिक्षा और रोजगार के क्षेत्र की तस्वीर पूरी तरह संतोषजनक नहीं है। उच्च शिक्षा, चिकित्सा, विज्ञान, कानून, प्रबंधन और तकनीकी क्षेत्रों में अंग्रेजी का प्रभाव अभी भी बहुत अधिक है। रोजगार के अवसरों से अंग्रेजी के जुड़ाव के कारण अनेक परिवारों में इसे सफलता की अनिवार्य सीढ़ी मान लिया जाता है। परिणामस्वरूप हिन्दी के प्रयोग को लेकर कहीं-कहीं संकोच और अंग्रेजी के प्रति अनावश्यक आकर्षण दिखाई देता है।

हिन्दी के सामने कुछ आंतरिक चुनौतियाँ भी हैं। सोशल मीडिया की त्वरित भाषा में वर्तनी की अशुद्धियाँ, अनावश्यक अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग और भाषा के प्रति बढ़ती लापरवाही चिंता का विषय है। दूसरी ओर विज्ञान, तकनीक और उच्च शिक्षा के विषयों पर सरल, गुणवत्तापूर्ण और अद्यतन हिन्दी सामग्री की कमी भी एक बड़ी बाधा है।

इस स्थिति के लिए केवल सरकार को जिम्मेदार ठहराना उचित नहीं होगा। शिक्षा व्यवस्था, अभिभावक, शिक्षक, लेखक, मीडिया और हिन्दी भाषी समाज—सभी की भूमिका महत्वपूर्ण है। जिस भाषा के प्रति उसके अपने समाज में आत्मविश्वास कमजोर होगा, उसका व्यापक विकास कठिन होगा।

समाधान के लिए हिन्दी को केवल सम्मान और समारोह की भाषा बनाकर नहीं छोड़ा जा सकता। उसे ज्ञान और रोजगार से जोड़ना होगा। उच्च शिक्षा की उत्कृष्ट पुस्तकें हिन्दी में उपलब्ध करानी होंगी। विज्ञान, चिकित्सा और तकनीक के विषयों को सरल हिन्दी में प्रस्तुत करना होगा। अनुवाद की गुणवत्ता सुधारनी होगी तथा डिजिटल तकनीक और कृत्रिम बुद्धिमत्ता के क्षेत्र में हिन्दी के लिए आधुनिक संसाधन विकसित करने होंगे।

विद्यालयों में हिन्दी शिक्षण को केवल परीक्षा और अंक प्राप्त करने तक सीमित न रखकर लेखन, संवाद, तर्क, रचनात्मकता और व्यावहारिक जीवन से जोड़ना होगा। विद्यार्थियों में यह विश्वास पैदा करना होगा कि हिन्दी का ज्ञान आधुनिक अवसरों में बाधा नहीं, बल्कि उनकी अतिरिक्त क्षमता है।

साथ ही हिन्दी का विकास अन्य भारतीय भाषाओं के विरोध में नहीं होना चाहिए। भारत की भाषाई विविधता उसकी सांस्कृतिक शक्ति है। हिन्दी को अन्य भारतीय भाषाओं के साथ संवाद, सहयोग और समन्वय करते हुए आगे बढ़ना चाहिए।

अंततः हिन्दी का भविष्य केवल सरकारी नीतियों से तय नहीं होगा। यह हमारे व्यवहार, शिक्षा, तकनीक और सामाजिक दृष्टिकोण से भी निर्धारित होगा। हिन्दी को केवल सम्मान नहीं, सामर्थ्य चाहिए; केवल बोलने वालों की संख्या नहीं, बल्कि ज्ञान-सृजन और रोजगार के अवसर चाहिए। जिस दिन हिन्दी में विद्यार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकेगा, शोध कर सकेगा, तकनीकी ज्ञान अर्जित कर सकेगा और सम्मानजनक रोजगार पा सकेगा, उस दिन हिन्दी केवल भावनाओं की भाषा नहीं रहेगी, बल्कि आधुनिक भारत की समर्थ ज्ञान-भाषा के रूप में और अधिक मजबूती से स्थापित होगी।



आशीष कुमार रस्तोगी

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

रह-रहकर उठती है सिहरन, घर लौटो!

रह-रहकर उठती है सिहरन,
घर लौटो!
आठ गुना बारह की छत के
नीचे घुटते हैं कुछ सपने,
भभके कमरे बीच उमस के
बैठा एक तपस्वी तपने।
मुड़ी कील पर अटका पंखा,
फँक रहा गर्मी का झोंका
कहती है सीलिंग की सीलन,
घर लौटो!
हैं उदास बिखरे बिस्तर पर
कंचा, शीशा, साबुनदानी
और प्लास्टिक की बोतल में
फ़िल्टर वाला बासा पानी।
जो आभूषण इस मरघट के,
पड़े तख्त के नीचे, खटके
अधमाँजे, अधजूठे बर्तन
घर लौटो!
घर में सब अपने होते हैं,
अपनों को मतलब रहता है,
एक जगह रहता है तन-मन,
घर रहता है, सब रहता है।
घर से बाहर बस अभाव है,
अलगावों से ही लगाव है
बजती है सूनी सी धड़कन,
घर लौटो!



आकाश पाठक

देवोपम है हिन्दी

हिन्दुस्तान की जान है हिन्दी,
भारत की पहचान है हिन्दी।
जन-जन की आवाज़ है हिन्दी,
भारत का अभिमान है हिन्दी।

हिन्दी है! हिन्दी है!
हम सबकी पहचान है हिन्दी!

गंगा जैसी शुद्ध है हिन्दी,
माटी जैसी सौधी है हिन्दी।
सूरज जैसी तेजस्वी है,
चाँद-सी मन को भाती हिन्दी।

हिन्दी है! हिन्दी है!
भारत की मुस्कान है हिन्दी!

नदियों का संगम है हिन्दी,
प्रकृति का शृंगार है हिन्दी।
शब्दों में संस्कार समेटे,
भारत का संसार है हिन्दी।

हिन्दी है! हिन्दी है!
संस्कृति की जान है हिन्दी!

विश्व के कोने-कोने में,
आज चमकती अपनी हिन्दी।
सीमाओं को पार कर रही,
मन से मन को जोड़ती हिन्दी।

हिन्दी है! हिन्दी है!
विश्व-पटल की शान है हिन्दी!

संस्कृति को दिखलाती हिन्दी,
सभ्यता को बतलाती हिन्दी।
वेदों से लेकर आज तलक,
ज्ञान की ज्योति जलाती हिन्दी।

हिन्दी है! हिन्दी है!
ज्ञान का वरदान है हिन्दी!

भारत के कण-कण में बसी है,
भारत के जन-जन में हिन्दी।
रिशतों की मिठास लिए है,
माँ-सी प्यारी लगती हिन्दी।

हिन्दी है! हिन्दी है!
माँ-सी स्नेहिल हिन्दी!

आओ मिलकर प्रण यह लें—
मान बढ़ाएँ अपनी हिन्दी।
घर-घर में इसका दीप जलाएँ,
जन-जन तक पहुँचाएँ हिन्दी।

नहीं किसी से कम है हिन्दी,
नहीं किसी से हारती हिन्दी।
भारत माँ के माथे की
सबसे सुंदर शान है हिन्दी।

हिन्दी है! हिन्दी है!
हम सबका सम्मान है हिन्दी!

देवों का वरदान है हिन्दी,
शब्दों में भाव महान है हिन्दी।
पावन, सुंदर, सरल, महान—
सचमुच देवोपम है हिन्दी!

जय हिन्दी! जय भारत!



उदेश्य तिवारी 'उदय'

बेटियाँ

शिक्षा के बाद
शादी हो कर जाती दूसरे घर में
जहाँ पर हर चेहरे/रिश्ते नए।

माँ जब खाना खाती
तब ऐसा लगता
बेटी होती तो काम में
हाथ बटाती।
कभी ऐसा लगता जैसे बेटी ने
आवाज दी हो
वार-त्योहारों पर आती उसकी यादें
माँ की आँखों में
बहने लग जाते आँसू।
पडोसी/रिश्तेदार पूछते
क्या हो गया
झूठ-मूट कह देती
कुछ नहीं।
जिनकी बेटियाँ होती है
वो ही इस मर्म को समझ सकती
बोल उठती
क्या बेटी की याद आ रही है
रोते हुए "हाँ" शब्द
निशब्द बन जाते है।

रिश्ते कि फ़िल्म ही जीवन में
कुछ इस तरह चलती है
पहला भाग बाबुल का होता है
मध्यांतर हो जाता
पिया का घर
हक़दार बदल जाते है।

यही तो जीवन का सच है
वार-त्योहारों पर
किसी से बेटी कि शक्ल मिलने पर
उसे मन निहारता रहता
और आँखों से आँसू
यादों के रूप में गिराता रहता।
इसलिए हर इंसान के दिल में
यादें बसाई है
जो मर्म को समझ कर
इंतजार करवाती है और
आँखों से आँसू गिरवाती है।

फिर कोई पूछता है की
क्या हुआ -क्या बेटियाँ की
याद आ रही है
तब माँ कहती - "हाँ"
यही क्रम हर घर में चलता है
जिनकी बेटियाँ होती है।



संजय वर्मा "दृष्टि"

मेरी शोभा-हिंदी

जैसे नारी की शोभा है बिंदी,
वैसे काव्य की शोभा है हिंदी।

हिंदी केवल भाषा नहीं,
यह भावों की अभिव्यक्ति है,
यह संस्कृति की पहचान है,
यह भारत की आत्मा की शक्ति है।

इसके शब्दों में मिठास है,
इसके भावों में गहराई है,
इसके हर अक्षर में
अपनापन और सच्चाई है।

तो आइए, गर्व से कहें—

यही है...!
यही है...!
मेरी सबकी प्यारी हिंदी!



जितेन्द्र वर्मा

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

उम्मीद की डोर थामे रखो

उम्मीद की डोर थामे रखो
तुफ़ानों में नाव संभाले रखो
हवा का रूख भी बदलेगा
आंख साहिल पे जमाए रखो

खुद की थोड़ी कीमत रखो
किरदार में भी ज़ीनत रखो
वक्त ज़रूर रियायत देगा
खुद की भी नियत साफ़ रखो

लुचई से खुद को दूर रखो
ईमानदारी पे जरा गुरूर रखो
सफ़र भी सलाहियत चुनेगा
सीरत से खुद को बेकसूर रखो



श्रीधर पांडेय
कृष्णार्थ

डोर थामे रखना

उम्मीदें ही तो जीवन है, आशा की पतवार लिए
जीवन की चंचल लहरों पर साथी, साहिल पार करेंगे।
उम्मीद की डोर थामे रखकर हम सूरज अपना गढ़ लेंगे
न झुके कभी संघर्षों में हम कांटों को भी सह लेंगे।
चटक चांदनी के आंगन में सुख की दुनिया रच लेंगे
किरणों के झूले में साथी बचपन अपना जी लेंगे
भूल धरा की आपाधापी खुशियां अपनी ढूंढेंगे
राह भले हो निपट अंधेरी, हम सूरज बन दहकेगे।
कठिन कंटकित जीवन पथ पर, हंसते हंसते चल देंगे
तुम मेरी देहरी पर केवल एक दीया बन कर देखो
हम आंगन, शत-शत दीपों का विमल उजास भरेंगे।
दीप जले या मन के आंसू, दुख की गाथा अपनी है
नभ के मोती चल लहरों पर सहज संजोती धरती है।
नदिया की चंचल धारा में कितने तूफान छले गए
दूर किनारे बैठी रजनी अकथ कहानी कहती है।
शीतल चंद्र किरण कहती है, शीतलता ही जीवन दर्शन
कर्मठता की आग प्रबल हो, मन को सरल बना ही लेंगे।
उम्मीदें ही तो जीवन है, आशा की पतवार लिए
जीवन की चंचल लहरों पर साथी, साहिल पार करेंगे।



पद्मा मिश्रा

उम्मीद की डोर थामे रखो

अंधेरी राहें जब भी रोके,
कदमों को ना रूकने देना,
एक चिंगारी रौशनी की
दिल में जलाये रखना,
मुश्किलें आसान होगी या नहीं,
हौंसले को अपने जिंदा रखना,
कल के गलत फैसले के लिए,
आज का सूरज मत डूबने देना,
धैर्य के साथ उठते कदमों को,
नये जीवन में डाल लेना,
गीत नया बोल नये
बेहिचक सुर ताल भी बदल लेना,
उम्मीद की डोर थामे रखो, पतंग तो हवा की
दिशा की ओर उड़ेगी,
डोर को अपने हाथ में मजबूती से थामें रखना,
एक नया प्रभात तुम्हारा अभिनंदन करेगा।

नमिता दुबे
मिश्रा



उम्मीद

उम्मीद की डोरी थमी रहे उम्र भर
जिंदगी लगाती रहे कहकहे उम्र भर
जीने के लिए क्यों सूरज ही जरूरी हो
दिये में बस बाती जलती रहे उम्र भर
क्यों हसरत पालूं महल दूमहलों की
खुशियां आंगन में बसती रहें उम्र भर
रंग बिरंगी दुनिया के मेले में रहा
फिर भी अकेला चलता रहा उम्र भर
यही अरदास है तुझसे ए मेरे मौला
थाम ले बस हाथ अनुपमा का उम्र भर



अनुपमा शर्मा,

कर्म प्रभावी

उम्मीद की डोर थामे रखो,
मन विश्वास बनाए रखो।
मानव जीवन बड़ा कीमती,
इसका मान बनाए रखो।
विचलित करे यदि जग कभी!
खुद को सकारात्मक रखो।
भाग्य संग हैं कर्म प्रभावी,
सदकर्म संग जीवन रखो।
वक्त बड़ा बलवान हमेशा,
उम्मीद की डोर थामे रखो



सीता गुप्ता

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

हार्दिक बधाई एवं अनंत शुभकामनाएँ



साहित्य-साधना के नव अध्याय का अभिनंदन

परम आदरणीय **डॉ. विकास दवे** जी को मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी के निदेशक पद पर पुनः नियुक्ति के लिए **हार्दिक बधाई एवं आत्मीय शुभकामनाएँ।**

साहित्य और संस्कृति के प्रति आपकी प्रतिबद्धता, दूरदृष्टि एवं सक्रियता ने अकादमी की कार्यशैली को नई दिशा और व्यापक आयाम प्रदान किए हैं। आपके पूर्ववर्ती कार्यकालों में साहित्य को महानगरीय सीमाओं से बाहर निकालकर गाँवों की चौपालों, लोकजीवन की संवेदनाओं और दूरस्थ अंचलों की साहित्यिक प्रतिभाओं से जोड़ने का उल्लेखनीय प्रयास हुआ। साहित्य के प्रति समर्पण, सांस्कृतिक चेतना और सृजनात्मक नवाचार का सुंदर समन्वय दिखाई देता है।

आपकी पुनः नियुक्ति साहित्यिक गतिविधियों के विस्तार, नवाचार और लोक-संस्कृति के संरक्षण की दिशा में एक नई उम्मीद का संचार करती है। विश्वास है कि आपके नेतृत्व में मध्यप्रदेश साहित्य अकादमी साहित्यकारों, नवोदित रचनाकारों और लोकप्रतिभाओं के लिए और अधिक सशक्त मंच बनकर उभरेगी।



सादर अभिनंदन एवं हार्दिक शुभकामनाओं सहित



हार्दिक
बधाई



आपके आगामी कार्यकाल के लिए मंगलकामनाएँ। साहित्य-संस्कृति की यह यात्रा निरंतर नई ऊँचाइयों को स्पर्श करे और आपकी साहित्य-साधना समाज में संवेदना, सृजन एवं विचारों का प्रकाश फैलाती रहे।

डॉ. प्रीति समकित सुराना
अन्तरा शब्दशक्ति

संस्कार की भाषा है हिंदी।

जनमानस की भाषा है हिंदी
सर्वसमाज की भाषा है हिंदी
भाषा है ये पुरखों की
पुरनियों की भाषा है हिंदी

अपनेपन की भाषा है हिंदी
संस्कार की भाषा है हिंदी
विचार की भाषा है हिंदी
अधिकार की भाषा है हिंदी

सरोकार की भाषा है हिंदी
व्यवहार की भाषा है हिंदी
अनेकता में एकता की भाषा है हिंदी
समानता की भाषा है हिंदी।



मनोज कौशल

सिर्फ "भाषा" कैसे कह दूँ?

जिस भाषा में
माँ ने पहली बार मुझे पुकारा,
उसी भाषा में
मैंने दुनिया को समझना सीखा...।
जिस भाषा में
दादी की कहानियाँ थीं,
पिता की सीख थी,
और मिट्टी की खुशबू थी
उसे मैं सिर्फ "भाषा" कैसे कह दूँ?
ये तो वो एहसास है
जो शब्दों से पहले
दिल में जन्म लेता है...।
वक्रत बदला,
लहजे बदले,
दुनिया ने कई भाषाएँ सिखाईं,
मगर अपनी बात कहते हुए
दिल आज भी हिंदी में ही धड़कता है...।

क्योंकि हिंदी
सिर्फ लिखी नहीं जाती,
जी जाती है...।
और जिस दिन
हम अपनी भाषा पर
गर्व करना सीख जाएँगे,
उस दिन हिंदी को
किसी "दिवस" की ज़रूरत नहीं
पड़ेगी...।।



अभिषेक आनंद

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

मन एक पंछी

मन एक पंछी उन्मुक्त गगन का,
पर बंधा है धागे से इस जीवन का।

पल में ब्रह्मांड की सैर कर आए,
पल में एक तिनके से भी डर जाए।

इसमें उठते हैं विचारों के बवंडर,
बाहर है शांत, पर अशांत है अंदर।

कभी मोह की लहरों में बहता है,
कभी वैराग्य की गुफा में रहता है।

इसे जीतना ही सबसे बड़ी जंग है,
जिसने जीत लिया, ईश्वर उसके संग है।

इस कोने में उम्मीदों का दीया जलता,
उस कोने में शंकाओं का साया पलता।

पल में राजा, पल में रंक बना देता,
इसकी मर्ज़ी के आगे कहाँ किसी का
चलता!

इसके भीतर ही नफ़रत है,
इसके भीतर ही प्यार छुपा।

इसके भीतर ही कोलाहल,
इसके भीतर ही संसार छुपा।

यह चाहे तो वैराग्य जगा दे,
यह चाहे तो ज़ंजीर बना दे।

सुलझाए तो यह खुद ही ईश्वर,
उलझे तो गहरी ज़ंजीर बना दे।



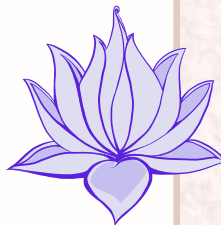
अंजनी मिश्रा

बचपन



हमारा बचपना का एक जमाना था |
हमारा खुशियों का एक खजाना था |
हमारी चाहत चांद को पाने की होती थी |
पर दिल हमारा तितलियों का दिवाना था |
स्कूल से थककर आते थे |
खेलने जरूर जाते थे |
न कोई चिंता न कोई फिकर थी |
इस चंचलता और ओठों,
में मुस्कान थी |
मां उठाती रोज स्कूल जाने को |
कभी पेट कभी सिर दर्द,
का आता बहाना बनाने को |
स्कूल से आकर बस्ता ,
फेंकर खेलने जाते थे |
मां बस्ता संभालती
वापस आने पर,
मां की डांट खाते थे |
रात को पढ़ने के लिए ,
मां बिठलाती थी |
तभी हमें नींद बहुत आती थी |
लुका छिपी, गढ़ा गेंद, राजा रानी,
चोर सिपाही हम खेलने जाते थे |
गिल्ली डंडा, कब्बड्डी, खो खो,
टिप्पू टिप्पुर, पतंग उड़ाना,
ये ही हमारे प्यारे खेल थे |
गिरते पानी में घर की गली में,
बहते पानी का बांध बांधते थे |
कागज की नांव बनाकर,
उस पानी में चलाते थे |
बरसात रूकने पर पैरों के पंजों पर,
मिट्टी रखकर बड़े घर बनाते थे |
उस घर को मिटाकर फिर,
अपने घर वापस आते थे |

गीली मिट्टी में लथपथ होकर,
जब अपने घर वापस आते थे |
तब मां की डांट बहुत खाते थे |
मना करने पर मां अपने हाथों से
भोजन कराती थी |
किसी बाबा का डर बतलाकर,
आंखें बंद कर भोजन का ,
कोर बनाकर खिलाती थी |
जब नींद न आए तो,
चंदा मामा का गीत गाती थी |
लोरी सुना सुना कर ,
अपनी गोद में सुलाती थी |
काश कोई हो तो हमें लोटा दे |
हमारे बचपन की वो यादें |

शिवशंकर दुबे
(गंगेले)

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

यह कैसा दौर है

कान में ईंट और होंठों पर ताला
यह कैसा दौर है, यह कैसा ज़माना

कैसे सुनें किसी की पीड़ा
जब कानों में हो स्वार्थ का कीड़ा
सच कैसे महसूस होगा भला
जब होंठों पर लगा हो ताला

आओ, स्वार्थ की ये ईंटें कानों से हटा दें
मौन के ये ताले ज़रा होंठों से हटा दें

करुणा और प्रेम का फिर संवाद होगा
अपनों से फिर अपना सा व्यवहार होगा।



मीना विवेक जैन

एक बात गांठ
में बांधना

इस रंग बदलती दुनिया में,
एक बात गांठ में बांधना,
जीवन सरल नहीं है प्यारे,
सोच समझ कर बोलना।

शतरंज की बाजी है बिछती,
यहां रोज बीच बाजार में,
अपने दोनों कानों को,
सदा खुला ही तुम रखना।

इस मकड़जाल सी दुनिया में,
फंदे बने फरेब के,
अपने होंठों पर ताले
सदा लगा कर ही रखना।।

एक दूजे की टांग खींचता,
हर इंसा नजर आता,
अपने कान और होंठ का,
सोच समझ प्रयोग करना।।



साधना छिरोल्या

अभिव्यक्ति पर पहरा

ईंटों से कानों को चुन दिया,
ज़िप से होंठों को सी दिया,
इंसान सुनता भी नहीं, कहता भी नहीं,
वाह रे समय, कैसा दौर जी दिया।

कानों में दीवार चुन दी गई है
ताकि सच भीतर न जा सके,
होंठों पर ताला जड़ दिया गया है
ताकि सच बाहर न आ सके।

यह तस्वीर किसी मूर्तिकार की कल्पना नहीं,
यह हमारे समय का सच है,
जहाँ सुनने की फुर्सत नहीं किसी को,
और बोलने की इजाजत नहीं किसी को।

हम सुनना भूल गए हैं,
सिर्फ सुनाना याद है,
हम समझना भूल गए हैं,
सिर्फ बताना याद है।

कब तक रहेंगे ये ताले?
कब तक रहेंगी ये दीवारें?
एक दिन तो बोलना पड़ेगा,
एक दिन तो सुनना पड़ेगा,
वरना ये मौन
हमें ही खा जाएगा।

खोलो मन के दरवाजे,
गिराओ ये ईंटों की दीवार,
तोड़ो ये खामोशी का ताला,
क्योंकि संवाद से ही बनता है संसार।



मंजू सरावगी मंजरी

तुमने कहा,...

तुमने कहा

जुबान पर ताला लगा कर रखो
लो लगा लिया ताला
लेकिन कानों को कैसे बंद करूँ
जो तुम्हारी की हुई लांछना को दिन रात सुनते हैं
कानों में रूई ठूँसने के बाद भी
तुम्हारी गर्जन तर्जन कानों के पर्दे फाड़ देती है।
हमसे कहते हो कम बोला करो
किंतु खुद एक शब्द को बोलने के लिए
हजार शब्द बोलते हो
हर बात में से बाल की खाल निकालते हो
कितना भी ठीक काम कर लो

उसमें कुछ ना कुछ कमी हूँ ही लेते हो
और हो जाता है प्रवचन शुरू
हालांकि हमने होंठों को सिल कर रखने
और कानों को सुनने की आदत डाल ली है
किंतु सहने की भी एक सीमा होती है
जिस दिन वह सीमा पार हो गई
फिर न जाने क्या होगा
अभी तक तो बड़ी ही सहनशीलता से
तुम्हारी गृहस्थी को संभाल कर रखा है
पर अब मेरी बर्दाश्त की सीमा पार हो चुकी है
अब नहीं लगता कि और बहुत दिनों तक
इतना अपमान बर्दाश्त कर पाऊँगी
मैंने बड़े सन्न से
इस गृहस्थी की गाड़ी को संभाल कर रखा
अब इसे तोड़ने की पूरी जिम्मेदारी तुम्हारी होगी



राधा गोयल

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

सृजक-सृजन समीक्षा

रविवारिय केंद्रीय रचनाकार विशेषांक

सुरजीत मान जलईया सिंह द्वारा रचित उपन्यास 'हाउस हसबैंड' (श्वेतवर्णा प्रकाशन) जिसका नाम सुनते ही मन में उसे पढ़ने की जिज्ञासा मन में भर आई, जिस उपन्यास का शीर्षक ही एक नये विषय के केन्द्र के इर्द-गिर्द बुना हो और वह जिस सहजता से एक चित्र हमारे सामने खींचता है वह वर्तमान समाज के नये गठन में अवश्य ही सहायक सिद्ध हो सकता है।

समकालीन मध्यमवर्गीय पारिवारिक ताने बाने, लैंगिक रूढ़ियों और पुरुष के आंतरिक मनोविज्ञान की जटिल परतों को उघाड़ने वाली एक बेहद संवेदनशील एवं विचारोत्तेजक कृति है। जहाँ आज का विमर्श प्रायः स्त्री की स्वावलंबिता और उसके संघर्ष तक सीमित रहता है, वहीं यह उपन्यास उस अनदेखे पहलू को केंद्र में लाता है जहाँ एक पुरुष पारंपरिक परिभाषाओं से बाहर निकलकर घर और परिवार का आधार बनता है।

कथानक एवं विषय वस्तु उपन्यास की कथा 'मान' और 'मोनिका' के वैवाहिक जीवन पर आधारित है। मोनिका एक उच्चकुलीन, शिक्षित और कामकाजी महिला है, जबकि मान एक संवेदनशील मध्यमवर्गीय पुरुष है। वकालत और नौकरी की आपाधापी से अलग होकर मान घर, रसोई और बच्चों की परवरिश की ज़िम्मेदारी पूरी निष्ठा से संभालता है। उपन्यास का मूल द्वंद्व यहीं से शुरू होता है – हमारा समाज पुरुष के मूल्य का निर्धारण केवल उसके पद, वेतन और सामाजिक प्रतिष्ठा से करता है। ऐसे में जब मान 'हाउस हसबैंड' की भूमिका चुनता है, तो समाज उसे सराहना देने के बजाय आलसी, नकारा और परनिर्भर ठहराने लगता है।

मानसिक द्वंद्व और प्रमुख प्रतीक लेखक ने पुरुष के अंतर्मन में चलने वाले मौन युद्ध को बेहद सूक्ष्मता से चित्रित किया है। मान का संघर्ष बाहरी दुनिया से कम और अपने भीतर के संस्कारों, पिता की अपेक्षाओं और 'ख्वाहिशों की धीमी मौत' से अधिक है।

जली हुई रोटी: उपन्यास में पहली बार रोटी का जल जाना केवल एक रसोई की चूक नहीं है, बल्कि यह पुरुष के अहंकार, संशय और सामाजिक दबाव के बीच के घर्षण का गहरा प्रतीक है।

भीतरी कोठरी: घर का स्टोर रूम मान के लिए उसकी 'भीतरी कोठरी' बन जाता है, जहाँ वह अपनी अधूरी वकालत, पुरानी स्मृतियों और अनकहे आंसुओं के साथ आत्ममंथन करता है। अनचाहे कैमरे: लेखक ने समाज की निगरानी रखने वाली नज़रों और तानों को 'अनचाहे कैमरों' का रूपक दिया है, जो बिना किसी तकनीक के लगातार रिश्तों में संदेह और असुरक्षा बोते रहते हैं।

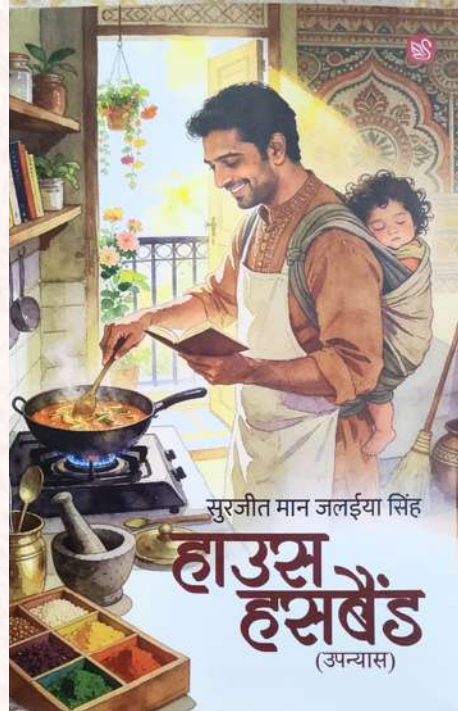
पात्रों का यथार्थवादी चित्रण उपन्यास के पात्र किसी काल्पनिक आदर्शवाद पर नहीं टिके हैं। मान एक सामान्य इंसान है, जो अपनी कमजोरियों, डर और तन्हाई के साथ जीता है। दोपहर के समय खाली घर में पुरुष का अकेलापन और बिना किसी श्रोता के उसका मौन दर्द पाठक को झकझोरता है। वहीं, मोनिका का चरित्र केवल एक कामकाजी पत्नी का नहीं, बल्कि एक समझदार और सशक्त साथी का है जो मान को उसकी सामाजिक हैसियत से नहीं, बल्कि उसके समर्पण और आंतरिक गरिमा से आँकती है।

सामाजिक दोहरेपन पर प्रहार उपन्यास समाज के दोहरे चरित्र को बेनकाब करता है। मान अपनी डायरी में लिखता है कि समाज चाहता है कि स्त्री अपने पैरों पर खड़ी हो और कमाए, लेकिन जब एक पुरुष घर संभालता है, तो वह खुलकर खुद को 'हाउस हसबैंड' नहीं कह पाता। पड़ोसी और रिश्तेदार उस गिद्ध की तरह बन जाते हैं जो किसी व्यक्ति की कमजोरी या असामान्य निर्णय पर अपनी जुबान से उसकी देह उधेड़ देते हैं।

शिल्प, भाषा और निष्कर्ष आत्मकथात्मक और मनोवैज्ञानिक डायरी शैली में लिखा गया यह उपन्यास सीधे पाठक के दिल में उतरता है। भाषा अत्यंत सहज, काव्यात्मक और दार्शनिक है। मान का अपनी कमजोरियों को स्वीकार करना और यह समझना कि "सच्चा मूल्य बाहर की अदालतों में नहीं, बल्कि भीतर की शांति और परिवार की स्थिरता में है," कहानी को एक परिपक्व ऊंचाई देता है। 'हाउस हसबैंड' केवल एक घरेलू कहानी नहीं, बल्कि आत्मसम्मान, बराबरी और सच्चे मानवीय प्रेम का एक सशक्त दस्तावेज़ है।

समीक्षक परिचय -

नाम बबिता कुमावत (सहायक प्रोफेसर)
शिक्षा एम ए. बी एड. नेट, पीएचडी शोधार्थी,
ईमेल bkumawatbarni13@gmail.com
मोबाईल नंबर 9928291605



पुस्तक:

हाउस हसबैंड (उपन्यास)

लेखक:

सुरजीत मान जलईया सिंह

प्रकाशक:

श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली

प्रकाशन वर्ष:

2026

मूल्य :

₹399 (सजिल्द)

समीक्षक -

बबिता कुमावत

संप्रति -

सहायक प्रोफेसर, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमकाथाना,
सीकर(राजस्थान) सहायक संपादक (साहित्य रत्न पत्रिका)

प्रकाशन -

प्रोफेसर बबिता की कविताएँ (काव्य संग्रह)

देश विदेश की विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में गजल, कविता, कहानी, लघु कथा व शोध आलेखों का प्रकाशन, मन की उमंग (साझा काव्य संग्रह), सब अंधकार मिट जाएगा (साझा काव्य संग्रह) दो रोटी की बात (साझा काव्य संग्रह) सड़क किनारे सपने (साझा काव्य संग्रह) स्वतंत्रता दिवस (साझा संकलन), भारत दर्शन (साझा यात्रा वृत्तांत) व विभिन्न पुस्तकों में शोध आलेख।

प्रस्तुतकर्ता

डॉ. प्रीति समकित सुराना

संस्थापक एवं संपादक

अन्तरा
शब्दशक्ति

आपका सहयोग सादा मिलता रहे.

निवेदक :- डॉ. प्रीति समकित सुराना (संस्थापक एवं संपादक)

अन्तरा शब्द शक्ति प्रकाशन एवं संस्था

रचना भेजें ईमेल :- antrashabshakti@gmail.com

संपर्क: 9009423393

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

प्रपंच

मिश्री से बोल हमेशा बोलिए
कर्णप्रिय हो शब्द मुंह तभी खोलिए।

लबों को शांत रख कभी
कानों को खुला रखिए।

एक मन से दूसरे मन
तरंगों को पहुँचने दीजिए।

थाह दूसरों की ले प्रपंच जो रचाता है
कहने का मौका उसको भी दीजिए।

खोल अपने कानों को
मुख की उसकी भी सुनिए।

मौन ऐसी साधना है सच को जो दिखाता है।
गलत सही को तब वो सामने लाता है।

पथ है यह कठिन संभल चलना सिखाता है
जीवन में आगे यही बढ़ाता है।

मिश्री से बोल हमेशा बोलिए
कर्णप्रिय हो शब्द मुंह तभी खोलिए।



विशाखा सिंघल।

नया दौर

"वेलेंटाइन डे" का मतलब,
बोले तो, प्यार लुटाने का दिन,
कागज के पत्रों से,
फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम तक।
लाल गुलाब से सजे,
फूलों के महक भरे गुलदस्ते तक।
बिखरा हुआ है प्यार।
हफ्ते भर पहले से ही,
चल पड़ा है ये कारोबार।
पांच सितारा होटल बुक हैं,
अर्द्धनग्न युवतियों से भरे सागर तट हैं।
देह की पूजा चल रही,
वासना के रूप में प्रेम की हलचल मची।
जेब में जिसके जितना ज़ोर है,
प्रेम उसका उतना ही प्योर है।

फरवरी में होती डेटिंग,
दिसंबर तक साथ होता कोई और है।
प्यार का ये अंदाज़ नया,
नए जेनरेशन का नया दौर है।



नीलम पांडेय

कलयुग – एक सच

चेहरों पर मुस्कान सजी है, दिल में मगर अंधेरा है,
हर कोई अपना लगता है, पर कौन यहाँ सच में मेरा है।

रिश्तों में अब प्यार नहीं, बस मतलब का व्यवहार है,
जिसके पास पैसा ज्यादा, उसका ही संसार है।

सच बोलो तो लोग रूठें, झूठ कहो तो तालियाँ हैं,
आजकल इंसानियत कम, दिखावे की बोलियाँ हैं।

मोबाइल में दुनिया पूरी, फिर भी दिल क्यों तन्हा है,
हजारों लोग जुड़े हुए हैं, फिर भी अपना कौन यहाँ है।

माँ-बाप ने जीवन दे डाला, बच्चों के सपने सँवार दिए,
बुढ़ापे में वही माँ-बाप, क्यों घर के कोने में उतार दिए।

पैसा कमाने की दौड़ में, इंसान खुद को भूल गया,
दुनिया जीतने निकला था, अपने घर से ही दूर गया।

चेहरे हँसते रहते हैं, आँखों में मगर सवाल हैं,
किसी के हिस्से कर्ज़ मिला, किसी के हिस्से मलाल हैं।

हर कोई मजबूत दिखता है, हर कोई अंदर से टूटा है,
जिसे समझा था सबसे अपना, वही कहीं पीछे छूटा है।

कलयुग का सच यही है, यहाँ वक्त किसी के पास नहीं,
रिश्ते तो सबके अपने हैं, पर रिश्तों में एहसास नहीं।

फिर भी उम्मीद बाकी है, इंसानियत अभी मरी नहीं,
एक सच्चा दिल मिल जाए तो दुनिया इतनी बुरी नहीं।

थोड़ा प्यार बाँट देना, थोड़ा किसी का दर्द समझ लेना,
कलयुग चाहे जितना हो, तुम इंसान बने रहना।



मोहित भाटिया

किंतु पिता का !!!

ले तू कहता है तो अब मैं, छोड़ूँ कुछ भी कहना
किंतु पिता का मौन धारना, घातक होता है !!!

पूछा पाछी बात बात में
टोका टाकी करता
तुझको लगता भीतर तेरे
ताका झाकी करता

ले तू कहता है तो अब मैं, छोड़ूँ आँखें रखना
किंतु पिता का आँख ढांकना, घातक होता है !!!

माना मेरे शब्दों की है
धार जरा सी तीखी
रंदे ने लेकिन कब भाषा
मक्खन वाली सीखी

ले तू कहता है तो अब मैं, छोड़ूँ तुझको घिसना
किंतु पिता का अस्त्र डालना, घातक होता है !!!

जब तक मैं हूँ मुखर, मौन हैं
कालनेमि ये जग के
मैं हूँ तो हैं ठिठके ठिठके
कदम रूपहले ठग के

ले तू कहता है तो अब मैं, छोड़ूँ रे ये अँगना
किंतु पिता का द्वार त्यागना, घातक होता है !!!

तुझको लगता पैसे काफी
पंख हुए हैं तेरे
तुझको लगता ले सकता तू
अब सूरज के फेरे

ले तू कहता है तो अब मैं, छोड़ूँ वल्गा कसना
किंतु पिता का हाथ झाड़ना, घातक होता है !!!

मैंने तो बस इतना चाहा
तू अम्बर छू जाए
जितना मैंने पाया उससे
गुना सैकड़ों पाए

ले तू कहता है तो अब मैं,
छोड़ूँ विनती करना
किंतु पिता का हृदय
हारना, घातक होता है !!!



आलोकेश्वर चबडाल

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

साथ होने का अर्थ

तुम्हारा साथ सिर्फ मेरे साथ चलना नहीं है, मेरी राह के कुछ काँटे चुपचाप अपने हिस्से में ले लेना भी है।
घर की जिम्मेदारियों के बीच जब मैं थक जाती हूँ, तुम्हारा बिना कहे मेरे काम में हाथ बाँटा देना, मेरी छोटी-सी परेशानी को अपनी परेशानी समझ लेना— शायद यही तो साथ है।
हम अपने बच्चों को सिर्फ बड़ा नहीं कर रहे, उन्हें पालते हुए खुद भी बहुत कुछ सीख रहे हैं। उनकी हँसी में साथ हँस रहे, उनकी शरारतों पर साथ मुस्करा रहे!

कभी मैं थकी तो तुमने संभाला, कभी तुम व्यस्त रहे तो मैंने जिम्मेदारी थामी— और यूँ ही हमने मिलकर अपना घर बनाया।
मुझे सबसे अच्छा यह लगता है कि तुमने मेरे रिश्तों को कभी मुझसे अलग नहीं समझा। मेरे मायके के लोगों को वही सम्मान दिया जिसकी मैं मन ही मन उम्मीद करती थी।
मेरे मां-बाई के प्रति तुम्हारा आदर मेरे लिए किसी उपहार से कम नहीं।
और एक बात जो शायद छोटी लगे, पर मेरे लिए बहुत बड़ी है— सबके सामने तुम्हारा मेरा सम्मान करना। मेरी बात को महत्व देना, मेरी राय सुनना, किसी के सामने मुझे छोटा न होने देना— इन बातों का मूल्य शायद वही समझ सकता है जिसने रिश्तों को सिर्फ निभाया नहीं, महसूस भी किया हो।

हमारे बीच भी हर दिन आसान नहीं रहा। कभी मतभेद हुए, कभी नाराज़गी रही, कभी बातों ने खामोशी का रूप ले लिया। लेकिन हर बार रिश्ता जीत गया, हमारी अपनी-अपनी जिद हार गई।

समय के साथ प्रेम का रूप भी बदलता है। शुरुआत की बेचैनी धीरे-धीरे विश्वास बनती है, लंबी बातों की जगह कभी एक नज़र काफ़ी होती है, और “मैं हूँ” कहने की जगह सिर्फ साथ होना ही बहुत कुछ कह देता है।

आज समझती हूँ, पति होना केवल जीवनसाथी कहलाना नहीं है। यह उस व्यक्ति का होना है जो तुम्हारी सफलता से खुश हो, तुम्हारी थकान को समझे, तुम्हारे परिवार को अपना सम्मान दे, तुम्हारे बच्चों की जिम्मेदारी तुम्हारे साथ बाँटे और तुम्हें सबके बीच भी तुम्हारी गरिमा के साथ देखे।

तुमने मेरे लिए कोई असाधारण कहानी नहीं लिखी, बस रोज़मर्रा की जिंदगी में छोटी-छोटी ऐसी बातों की जिन्होंने मेरी जिंदगी को थोड़ा आसान, थोड़ा सुरक्षित और बहुत अपना बनाया।

इसलिए तुम्हारे लिए मेरे पास कहने को बहुत बड़े शब्द नहीं हैं। बस इतना कहूँगी— जीवन की इस लंबी यात्रा में अगर फिर कभी शुरुआत से चलना पड़े, तो मैं यही घर चुनूँगी, यही जिम्मेदारियाँ चुनूँगी, यहीं उतार-चढ़ाव चुनूँगी और सबसे पहले तुम्हारा हाथ चुनूँगी।
क्योंकि प्रेम का सबसे सच्चा रूप शायद यही है— जब सालों बाद भी किसी के साथ को देखकर मन कहे, “अच्छा हुआ, हमने एक-दूसरे को चुना था....”



वन्दना सिंह

रूहान...!!



अभिषेक आनंद

“समाजसेवा : बदलाव की एक छोटी-सी शुरुआत”

समाजसेवा केवल बड़े-बड़े कार्य करने का नाम नहीं है। किसी जरूरतमंद के चेहरे पर मुस्कान लाना, किसी बच्चे को पढ़ने के लिए प्रेरित करना और किसी के भविष्य को बेहतर बनाने की छोटी-सी कोशिश भी समाजसेवा है।

जब मैंने अपने गाँव के छोटे-छोटे बच्चों को शिक्षा के लिए प्रयास करते देखा, तो मेरे मन में उनके लिए कुछ करने की इच्छा जागी। इसी भावना ने मुझे एकल विद्यालय से जुड़ने की प्रेरणा दी। यहाँ बच्चों को शिक्षा के साथ-साथ संस्कार, अनुशासन, देशप्रेम और अपने समाज के प्रति जिम्मेदारी का भाव भी सिखाने का प्रयास किया जाता है। मेरे लिए बच्चों को पढ़ाना केवल एक जिम्मेदारी नहीं, बल्कि एक सुखद अनुभव है। शुरुआत में कुछ बच्चे झिझकते थे, खुलकर बात नहीं कर पाते थे। धीरे-धीरे उनके भीतर आत्मविश्वास आया। आज जब वे बिना डर के प्रश्न पूछते हैं, नई बातें सीखने की कोशिश करते हैं और अपने सपनों के बारे में बताते हैं, तो मन को बहुत खुशी मिलती है।

मेरा मानना है कि समाज को बदलने के लिए हमेशा किसी बड़े अवसर का इंतज़ार नहीं करना चाहिए। बदलाव की शुरुआत हम अपने आसपास से कर सकते हैं। यदि हर व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार किसी एक बच्चे की शिक्षा, किसी बुजुर्ग की सहायता या किसी जरूरतमंद का साथ देने का संकल्प ले, तो समाज में सकारात्मक परिवर्तन अवश्य आएगा।

समाजसेवा का सबसे सुंदर रूप वही है जिसमें दिखावे से अधिक भावना और स्वार्थ से अधिक सेवा हो। एक छोटी-सी कोशिश किसी के जीवन में बड़ी उम्मीद बन सकती है।



आचार्या शिखा चंदेल

तेरी आँखों का ख़ुमार रहा है,
दिल को तेरा इंतज़ार रहा है..।

शब की तन्हाई में तेरी यादों का,
एक मीठा सा गुबार रहा है..।

हमने लब खोलकर कहा भी नहीं,
दर्द आँखों का इज़हार रहा है..।

तू नहीं पास, फिर भी लगता है,
हर तरफ़ तेरा ही दीदार रहा है..।

इश्क़ मिटता नहीं फ़ना होकर,
रूह में तेरा क़रार रहा है..।

नाम तेरा जो दिल ने लिख डाला,
उम्र भर वो ही यादगार रहा है...।



अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

संकल्प

आज चंदना बहुत खुश थी; उसके छोटे बेटे का भी विवाह हो गया हो गया था। बहुत बड़े परिवार की इकलौती संतान; उसे लगा वह किसी हद तक अपनी जिम्मेदारियों से मुक्त हो गई है।

धीरे-धीरे सारे मेहमान भी जा चुके थे और कुछ दिनों बाद बहू भी अपने पीहर जाकर वापस आ चुकी थी। घर शांतिपूर्ण ढंग से चल रहा था किंतु कुछ दिनों बाद; छोटी बहू का बिना सोचे समझे सबके सामने बेबाक बोलना अच्छा नहीं लग रहा था; और आज तो चंदना की बनाई सब्जी में सबके सामने एकदम से मीनमेख निकालना उसे कुछ अच्छा नहीं लगा। जाकर चुपचाप कमरे में लेट गई। धीरे-धीरे उसका मस्तिष्क पाँच साल पीछे की ओर ले जाने लगा, जब उसके बड़े बेटे की शादी हुई। सुप्रिया नाम के अनुरूप सुंदर, सरल, सहज स्वभाव की; किंतु चंदना में उस समय वही सास वाला दम्भ और उसका यही स्वभाव उसे सुप्रिया के लिए पूरे समय कुछ न कुछ तीखा बोलने पर मजबूर कर देता। आज वह सोच रही थी पाँच साल हो गए, उसने कितनी बार बिना गलती के भी उसे डाँटा। कितनी बार स्वास्थ्य खराब होने पर भी लिहाज नहीं किया, लेकिन सुप्रिया मां जी!!! बस बोलकर चुप रह जाती थी। आज चंदना के मन में अपराध बोध उत्पन्न हो रहा था, अपने आप को बहुत ओछा महसूस कर रही थी। सोच रही थी चाहे अनचाहे उसने सुप्रिया के साथ गलत तो किया ही है; बस उसने प्रण किया अब मुझे सब ठीक करना है।

चंदना सुबह उठी एक नई सोच, एक नए संकल्प के साथ; सुप्रिया को उसके हिस्से का प्यार; छोटी बहू के अनियंत्रित शब्दों पर नियंत्रण और अनुशासन का पालन।

साधना छिरोल्या



दिल ने जब खुद को पुकारा

मेरे दिल ने जब खुद को पुकारा,
जाने कहाँ से चला आया
ये खुशी भरा मौसम सुहाना...
मेरे दिल ने जब खुद को पुकारा...

आँखों में कई सपने सजाए बैठी हूँ,
सच हो उन मंज़िलों की ओर बढ़ती हूँ..
ख्वाबों को अपने खुद से मिलाया,
मैं कब अपनी ज़िंदगी से डरती हूँ...

जाने कहाँ से खेल आया
ये सारा दिलकश नज़ारा...
मेरे दिल ने जब खुद को पुकारा...

आईने में खुद से रोज़ ही मिलती हूँ,
अपने अरमानों से हर रोज़ पूछती हूँ।
कैसी भी हो ये दुनिया, क्या करना है....
अपने अस्तित्व के लिए लड़ती हूँ।

जाने कहाँ से मुस्कुराया...
मेरी रूह का सितारा...
मेरे दिल ने जब खुद को पुकारा...

मेरे दिल ने खुद को पुकारा,
जाने कहाँ से सिमट आया
मुझमें ये मौसम प्यारा-प्यारा...
मेरे दिल ने खुद को पुकारा....!!



नंदिता तनुजा

"राम और रावण का अनुशासन" दोनों में अनुशासन था।

रावण में भी था, राम में भी।

रावण का अनुशासन था हर दिन चार वेद पढ़ना, बिना नागा शिव की आराधना, ब्रह्म मुहूर्त में उठकर शास्त्र लिखना, सोने की लंका को नियम से चलाना। बिना अनुशासन के कोई दस मस्तिष्कों का ज्ञान समझ सकता है क्या?

राम का अनुशासन भी था वचन पर अडिग रहना, वन में भी राजा जैसा आचरण, समय पर संध्या, क्रोध में भी मर्यादा।

फर्क कहाँ था?

रावण का अनुशासन था मैं क्या पा सकता हूँ इसके लिए।

राम का अनुशासन था मैं क्या छोड़ सकता हूँ इसके लिए।

एक ने अनुशासन से शक्ति अर्जित की, और सोचा अब मैं नियमों से ऊपर हूँ।

दूसरे ने अनुशासन से शक्ति अर्जित की, और खुद को नियमों के नीचे रखा।

तभी तो एक का अनुशासन उसकी लंका जला बैठा,

और दूसरे के अनुशासन ने पूरी दुनिया को रामराज्य का सपना दिखा दिया।

अनुशासन दोनों में था,

बस एक में अहंकार जुड़ गया, दूसरे में समर्पण।



आनंद पाण्डेय "केवल"

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

जब उपलब्धि से पहले सम्मान और सम्मान से पहले पंजीकरण आ जाए

रूपए मेरे सम्मान, मेरा नाम और क्रिएटर सम्मान समारोह

एक समय था जब सम्मान पाने के लिए व्यक्ति को जीवन में कुछ करना पड़ता था। पढ़ना पड़ता था, लिखना पड़ता था, समाज के लिए काम करना पड़ता था, अपनी प्रतिभा को निखारना पड़ता था और लोगों का विश्वास अर्जित करना पड़ता था। तब सम्मान व्यक्ति के पीछे चलता था।

अब समय बदल गया है। आजकल कभी-कभी व्यक्ति सम्मान के पीछे चलता है और सम्मान के आगे आयोजक संस्था का बैनर चलता है।

पहले लोग पूछते थे—“आपने क्या किया है?”

अब पूछा जाता है—“आपको कौन-सा अवॉर्ड मिला है?”

पहले उपलब्धि प्रमाणपत्र में दर्ज होती थी। अब कई बार प्रमाणपत्र उपलब्धि का परिचय बन जाता है। और यदि प्रमाणपत्र पर “राष्ट्रीय”, “अंतरराष्ट्रीय”, “विशिष्ट”, “गौरव”, “रत्न” या “स्टार” जैसे शब्द लिखे हों, तो सम्मानित व्यक्ति का परिचय इतना लंबा हो जाता है कि श्रोता उपलब्धि सुनने से पहले ही थक जाता है।

यही आधुनिक सम्मान संस्कृति का एक मनोरंजक दृश्य है—जहाँ कभी-कभी रूपए मेरे सम्मान, मेरा नाम और मेरा क्रिएटर सम्मान समारोह एक-दूसरे से ऐसे जुड़े दिखाई देते हैं, जैसे चाय, बिस्कुट और सोशल मीडिया पोस्ट। सम्मान का नया सूत्र पुराने समय में सम्मान का सूत्र था—

मेहनत + प्रतिभा + योगदान = सम्मान।

आजकल इसका एक नया संस्करण भी सुनाई देता है—

पंजीकरण + शुल्क + मंच + फोटो + पोस्ट = सम्मान।

यहाँ एक बात स्पष्ट होनी चाहिए कि हर शुल्क-आधारित आयोजन गलत नहीं होता। किसी कार्यक्रम के आयोजन, हॉल, ध्वनि व्यवस्था, प्रमाणपत्र, ट्रॉफी, भोजन या अन्य व्यवस्थाओं के लिए शुल्क लिया जा सकता है। समस्या तब पैदा होती है, जब शुल्क को ही प्रतिभा का प्रमाण और भुगतान को ही प्रतिष्ठा का आधार बना दिया जाए।

आयोजक कहते हैं—“हम प्रतिभाओं को मंच प्रदान कर रहे हैं।”

प्रतिभा पूछती है—“मेरा चयन किस आधार पर हुआ?”

आयोजक कहते हैं—“आपकी प्रतिभा बहुत अच्छी है।”

प्रतिभा प्रसन्न होती है। फिर आयोजक कहते हैं—“बस, पंजीकरण शुल्क जमा कर दीजिए।”

प्रतिभा थोड़ी देर सोचती है और पूछती है—“क्या मेरी प्रतिभा का कोई मूल्यांकन भी हुआ है?”

आयोजक मुस्कराते हैं—“मूल्यांकन तो हुआ है, तभी तो आपको पंजीकरण का अवसर मिला है।” अब प्रतिभा के पास दो विकल्प हैं—या तो वह सम्मानित हो जाए, या सम्मान की प्रक्रिया पर विचार करती रहे। क्रिएटर बनने की आधुनिक विधि...

सोशल मीडिया ने रचनात्मकता को नया मंच दिया है। यह अच्छी बात है। आज कोई भी व्यक्ति अपनी कला, ज्ञान, विचार और अनुभव दुनिया तक पहुँचा सकता है। लेकिन “क्रिएटर” शब्द का विस्तार इतना हो गया है कि अब उसके लिए किसी विषय में विशेषज्ञ होना आवश्यक नहीं समझा जाता। मोबाइल उठाइए, कैमरा चालू कीजिए और कहिए—

“नमस्कार दोस्तों! मैं हूँ आपका अपना क्रिएटर।” अब यदि आपने चाय पीते हुए वीडियो बनाया, तो आप लाइफस्टाइल क्रिएटर हैं। चाय के साथ बिस्कुट दिखा दिया, तो फूड क्रिएटर हैं। चाय पीते समय दो प्रेरणादायक बातें बोल दीं, तो मोटिवेशनल क्रिएटर हैं। और यदि वीडियो पर कुछ लाइक आ गए, तो उभरते हुए क्रिएटर हैं। लाइक बढ़े तो लोकप्रिय क्रिएटर। फॉलोअर्स बढ़े तो प्रभावशाली क्रिएटर। वीडियो वायरल हुआ तो डिजिटल स्टार। मंच पर ट्रॉफी मिली तो सम्मानित क्रिएटर।

अब यदि प्रमाणपत्र पर “राष्ट्रीय” लिखा हो, तो परिचय में राष्ट्रीय जुड़ जाएगा। यदि “अंतरराष्ट्रीय” लिखा हो, तो अंतरराष्ट्रीय भी जुड़ जाएगा।

अंतरराष्ट्रीय बनने के लिए कभी-कभी विदेश जाना आवश्यक नहीं होता। मंच के पीछे विश्व का नक्शा, बैनर पर अंग्रेजी का नाम और भाषण में दो-चार विदेशी शब्द पर्याप्त वातावरण बना देते हैं। आयोजक संस्था का पवित्र उद्देश्य। आयोजक संस्था का उद्देश्य सुनने में बहुत सुंदर होता है—

“हम प्रतिभाओं को पहचान देना चाहते हैं।” “हम समाज में उत्कृष्ट कार्य करने वालों को प्रोत्साहित करना चाहते हैं।”

“हम नई प्रतिभाओं को मंच प्रदान करना चाहते हैं।”

“हम क्रिएटरों का मनोबल बढ़ाना चाहते हैं।”

इन उद्देश्यों पर किसी को आपत्ति नहीं हो सकती। प्रतिभाओं को प्रोत्साहन मिलना चाहिए। अच्छे कार्यों की पहचान होनी चाहिए। समाज में सकारात्मक योगदान करने वालों को सम्मान मिलना चाहिए।

लेकिन व्यंग्य वहाँ शुरू होता है, जहाँ इन उद्देश्यों के नीचे एक छोटा-सा वाक्य दिखाई देता है—

“पंजीकरण शुल्क : __ रुपये।”

प्रतिभा पूछती है—“यह शुल्क किस बात का है?”

उत्तर मिलता है—“आयोजन व्यवस्था का।”

प्रतिभा पूछती है—“क्या चयन उपलब्धि के आधार पर है?”

उत्तर मिलता है—“बिल्कुल।”

प्रतिभा फिर पूछती है—“तो शुल्क और सम्मान का क्या संबंध है?”

आयोजक कहते हैं—“कोई संबंध नहीं है। बस, सम्मान समारोह में भाग लेने के लिए पंजीकरण आवश्यक है।” यानी सम्मान और शुल्क का कोई संबंध नहीं, लेकिन शुल्क के बिना सम्मान समारोह में भाग लेना संभव नहीं। यह आधुनिक तर्कशास्त्र का एक ऐसा अध्याय है, जिसे पढ़कर अरस्तू भी अपनी नोटबुक बंद कर दें। पंजीकरण फॉर्म का महत्त्व, आजकल सम्मान समारोह में पंजीकरण फॉर्म का महत्त्व कभी-कभी सम्मान प्रमाणपत्र से भी अधिक हो जाता है। फॉर्म में नाम, पता, मोबाइल नंबर, सोशल मीडिया लिंक, फोटो, परिचय, उपलब्धियाँ और शुल्क की जानकारी माँगी जाती है। प्रतिभागी अपना परिचय लिखता है—

“मैं शिक्षक हूँ, लेखक हूँ, समाजसेवी हूँ, क्रिएटर हूँ...” फॉर्म में जगह कम पड़ जाती है। वह सोचता है—“क्या मैं अपनी उपलब्धियाँ लिखूँ या अपने सम्मान?” फिर वह लिखता है—

“विभिन्न सामाजिक, शैक्षिक एवं रचनात्मक गतिविधियों में सक्रिय।” यह वाक्य इतना व्यापक है कि इसमें लगभग पूरा जीवन समा सकता है। फॉर्म जमा होता है। फिर संदेश आता है—“बधाई! आपका चयन प्रतिष्ठित सम्मान समारोह के लिए हो गया है।”

प्रतिभागी प्रसन्न होता है। वह परिवार को बताता है। मित्रों को बताता है। सोशल मीडिया पर पोस्ट डालता है—“यह मेरे लिए गर्व का क्षण है।” अब कोई पूछता है—“किस उपलब्धि के लिए?”

वह कहता है—“मेरा चयन हो गया है।” “किस आधार पर?” “आयोजक संस्था ने किया है।” “क्या करना होगा?” “बस, पंजीकरण शुल्क जमा करना है।” और यहीं से सम्मान की यात्रा शुरू हो जाती है। सम्मान का आर्थिक पक्ष, रुपये जीवन की आवश्यकता हैं। किसी आयोजन को सफल बनाने के लिए धन चाहिए। हॉल का किराया, प्रमाणपत्र, ट्रॉफी, सजावट, भोजन, प्रचार और अन्य व्यवस्थाएँ बिना आर्थिक संसाधनों के संभव नहीं होतीं। इसलिए शुल्क लेना अपने आप में गलत नहीं है। लेकिन जब सम्मान का प्रचार इस प्रकार हो—

“सीमित सीटें! विशेष सम्मान! राष्ट्रीय स्तर का मंच! आज ही पंजीकरण करें!” तो प्रतिभागी के मन में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि वह सम्मान प्राप्त कर रहा है या किसी आयोजन की सेवा खरीद रहा है। यदि शुल्क आयोजन की लागत के लिए है, तो उसे स्पष्ट रूप से बताया जाए। यदि सभी पंजीकृत प्रतिभागियों को सम्मान दिया जाना है, तो उसे प्रोत्साहन या सहभागिता सम्मान कहा जा सकता है। यदि चयन उपलब्धि के आधार पर है, तो चयन मानदंड भी स्पष्ट होने चाहिए। क्योंकि रुपये से कार्यक्रम आयोजित किया जा सकता है, लेकिन रुपये को प्रतिभा का प्रमाण बना देना सम्मान की मूल भावना को कमजोर कर सकता है।

सम्मान समारोह का निमंत्रण, सम्मान समारोह का निमंत्रण भी आजकल अपने आप में एक साहित्यिक रचना होता है। “आप सादर आमंत्रित हैं...” “आपकी गरिमामयी उपस्थिति...”

“आपका सान्निध्य...” “आपकी उपस्थिति से कार्यक्रम की शोभा...” “आपके करकमलों द्वारा...”

“आपके आशीर्वाचन...” निमंत्रण पढ़कर ऐसा लगता है कि कोई राष्ट्रीय नीति बन रही है। फिर नीचे लिखा होता है—“सम्मानित होने वाले प्रतिभागियों से अनुरोध है कि वे निर्धारित तिथि तक पंजीकरण शुल्क जमा करें।” ऊपर गरिमामयी उपस्थिति, नीचे भुगतान की अंतिम तिथि। ऊपर प्रतिभा सम्मान, नीचे सीट सीमित। ऊपर ऐतिहासिक आयोजन, नीचे पंजीकरण अनिवार्य। सम्मान समारोह का निमंत्रण अब कभी-कभी विवाह निमंत्रण और ऑनलाइन बुकिंग संदेश का संयुक्त रूप लगता है। मंच की चमक और ट्रॉफी का वजन, सम्मान समारोह का मंच जितना सुंदर हो, कार्यक्रम उतना ही प्रतिष्ठित माना जाता है। बड़ा बैनर, चमकदार रोशनी, फूलों की सजावट, पीछे संस्था का नाम और सामने ट्रॉफियों की कतार। मंच पर बैठे अतिथि गंधर्व मुद्रा में होते हैं।

शेष अगले अंक में...



आशीष रस्तोगी



अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

जब उपलब्धि से पहले सम्मान और सम्मान से पहले पंजीकरण आ जाए

रूप मेरे सम्मान, मेरा नाम और क्रिएटर सम्मान समारोह

पिछले अंक का शेष भाग इस अंक में प्रस्तुत है...

सम्मानित व्यक्ति अपनी बारी की प्रतीक्षा करता है। घोषक की आवाज गूँजती है—
“अब हम आमंत्रित कर रहे हैं एक ऐसे व्यक्तित्व को, जिन्होंने डिजिटल जगत में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है...” सम्मानित व्यक्ति मंच पर जाता है। माला पहनाई जाती है। शॉल ओढ़ाई जाती है। ट्रॉफी दी जाती है। प्रमाणपत्र दिया जाता है। फोटो खिंची जाती है। फिर घोषक कहते हैं— “जोरदार तालियों से स्वागत कीजिए!” तालियाँ बजती हैं। सम्मानित व्यक्ति मंच से उतरता है। उसके चेहरे पर संतोष होता है। अब वह सम्मानित है। लेकिन मंच से उतरते ही आयोजक का स्वयंसेवक धीरे से कहता है— “सर, एक फोटो इधर भी।” फिर दूसरी ओर— “मैडम, संस्था के बैनर के सामने भी।” फिर— “एक फोटो मुख्य अतिथि के साथ।” फिर— “एक फोटो ट्रॉफी दिखाते हुए।” सम्मान समारोह समाप्त नहीं होता, फोटो समारोह जारी रहता है। फोटो का सम्मान और सम्मान की फोटो, आजकल सम्मान का सबसे बड़ा प्रमाण सोशल मीडिया पोस्ट है। यदि किसी व्यक्ति को सम्मान मिला और उसने पोस्ट नहीं की, तो मित्र पूछते हैं— “भाई, कुछ हुआ क्या?” वह कहता है— “हाँ, सम्मान मिला।” मित्र पूछता है— “फोटो?” “हाँ।” “पोस्ट क्यों नहीं की?” “सोचा, बाद में करूँगा।” मित्र कहता है— “अरे, सम्मान की फोटो समय पर डालनी चाहिए।” और फिर पोस्ट तैयार होती है— “आज का दिन मेरे जीवन का अविस्मरणीय दिन रहा। मुझे प्रतिष्ठित सम्मान समारोह में सम्मानित किया गया। यह सम्मान मेरे लिए प्रेरणा है। मैं आयोजक संस्था, मुख्य अतिथि, सभी अतिथियों और अपने शुभचिंतकों का हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ।” नीचे हैशटैग की पूरी सेना—
#सम्मान #क्रिएटर #राष्ट्रीयसम्मान #अंतरराष्ट्रीयसम्मान #ProudMoment #Award #CreatorLife #Achievement

फोटो में ट्रॉफी चमक रही है। प्रमाणपत्र दिखाई दे रहा है। मंच का बैनर स्पष्ट है। और सम्मानित व्यक्ति के चेहरे पर ऐसी मुस्कान है, जैसे अभी-अभी इतिहास में नाम दर्ज हुआ हो। कभी-कभी लगता है कि आज सम्मान का वास्तविक प्रमाणपत्र वह पोस्ट है, जिसे देखकर लोग कहें— “वाह! आपको तो बहुत बड़ा सम्मान मिला है।” नाम के आगे सम्मान, सम्मान मिलने के बाद नाम बदलने लगता है। पहले नाम था— “अमुक जी।” अब नाम हो गया— “राष्ट्रीय सम्मानित क्रिएटर अमुक जी।”

फिर किसी दूसरे कार्यक्रम में सम्मान मिला— “अंतरराष्ट्रीय सम्मानित क्रिएटर अमुक जी।” फिर तीसरा सम्मान— “बहुआयामी, विशिष्ट, राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय सम्मानित क्रिएटर अमुक जी।” अब परिचय इतना लंबा हो जाता है कि मंच संचालक को नाम पढ़ने में ही दो मिनट लग जाते हैं। कभी-कभी लगता है कि व्यक्ति का नाम छोटा पड़ गया है और सम्मान के विशेषण बड़े हो गए हैं। नाम के आगे सम्मान जुड़ना अच्छी बात है, लेकिन जब सम्मान नाम का स्थायी हिस्सा बन जाए और काम पीछे छूट जाए, तो प्रश्न उठता है— “क्या व्यक्ति सम्मानित है या सम्मान व्यक्ति का परिचय बन गया है?” सम्मान की प्रतियोगिता. सम्मान मिलने के बाद सबसे बड़ी चुनौती होती है—अगला सम्मान। एक ट्रॉफी मिली, तो दूसरी की तलाश। दो प्रमाणपत्र मिले, तो तीसरे की इच्छा। राष्ट्रीय सम्मान मिला, तो अंतरराष्ट्रीय सम्मान की आकांक्षा। अंतरराष्ट्रीय सम्मान मिला, तो वैश्विक सम्मान का सपना। एक क्रिएटर ने अपने कमरे में ट्रॉफियों की अलमारी बनवाई। मित्र ने पूछा— “इतनी ट्रॉफियाँ! क्या तुमने कोई बड़ा काम किया है?” क्रिएटर ने कहा— “हाँ, बहुत बड़ा काम किया है।” “क्या?” “मैंने सम्मान प्राप्त करने की निरंतरता बनाए रखी है।”

मित्र ने पूछा— “लेकिन तुम्हारी रचनाएँ कहाँ हैं?” क्रिएटर ने कहा— “वह सब सोशल मीडिया पर हैं।” और समाज पर प्रभाव? “वह तो पोस्ट के लाइक में दिखाई देता है।” और वास्तविक उपलब्धि? क्रिएटर ने ट्रॉफी उठाकर कहा— “यह देखो। इससे बड़ी उपलब्धि क्या होगी?” व्यंग्य यहीं है। ट्रॉफी उपलब्धि का स्मारक हो सकती है, लेकिन उपलब्धि का विकल्प नहीं। आयोजक संस्था का प्रचार, सम्मान समारोह के बाद आयोजक संस्था भी सक्रिय हो जाती है। “हमारी संस्था ने आज एक भव्य सम्मान समारोह आयोजित किया।” “देशभर की प्रतिभाओं को सम्मानित किया गया।” “कार्यक्रम में विशिष्ट अतिथियों की गरिमामयी उपस्थिति रही।” “सैकड़ों प्रतिभाओं को मंच प्रदान किया गया।” “कार्यक्रम ऐतिहासिक रूप से सफल रहा।” फिर फोटो का एल्बम तैयार होता है। हर फोटो में संस्था का बैनर दिखाई देता है। हर पोस्ट में संस्था का नाम आता है। हर सम्मानित व्यक्ति संस्था को टैग करता है। संस्था की पहचान बढ़ती है। यह स्वाभाविक भी है। आयोजक संस्था को अपने कार्य का प्रचार करने का अधिकार है। लेकिन जब संस्था की पहचान सम्मानित व्यक्तियों के वास्तविक कार्य से अधिक अपने आयोजन की भव्यता से बनने लगे, तब प्रश्न उठता है— “क्या संस्था प्रतिभाओं को मंच दे रही है या प्रतिभाएँ संस्था के प्रचार का मंच बन रही हैं?”

यह प्रश्न किसी संस्था विशेष के लिए नहीं, बल्कि हर आयोजन के लिए आत्ममंथन का विषय है। सम्मान का बाजार सम्मान का बाजार केवल ट्रॉफियों का बाजार नहीं है। यह पहचान का बाजार भी है। यहाँ प्रमाणपत्र पहचान है। ट्रॉफी प्रतिष्ठा है। फोटो प्रमाण है। मंच सामाजिक पूँजी है। और सोशल मीडिया पोस्ट प्रचार है। किसी व्यक्ति को सम्मान मिलता है, तो वह अपने परिचय में जोड़ता है। परिचय लंबा होता है, प्रभाव बढ़ता है। प्रभाव बढ़ता है, तो अगले आयोजन में मंच मिलने की संभावना बढ़ती है। मंच मिलता है, तो अगला सम्मान प्राप्त करने का अवसर बढ़ता है।

यह एक चक्र है— सम्मान → पोस्ट → पहचान → निमंत्रण → अगला सम्मान। इस चक्र में वास्तविक काम भी हो सकता है और केवल दिखावा भी। अंतर इस बात से तय होगा कि व्यक्ति सम्मान के बाद क्या करता है।

यदि सम्मान उसे और अच्छा काम करने की प्रेरणा देता है, तो सम्मान सार्थक है। यदि सम्मान केवल अगली ट्रॉफी की तलाश बन जाता है, तो वह आत्मप्रचार का माध्यम बन सकता है। असली क्रिएटर कौन? असली क्रिएटर वह नहीं, जिसके पास सबसे बड़ी ट्रॉफी है। असली क्रिएटर वह है, जो कुछ नया रचता है, समाज को कुछ उपयोगी देता है और अपने कार्य के प्रति जिम्मेदार रहता है। जो शिक्षक कठिन विषय को सरल बनाकर पढ़ाता है, वह क्रिएटर है।

जो लेखक समाज की समस्याओं पर लिखता है, वह क्रिएटर है। जो कलाकार अपनी कला से लोगों को जोड़ता है, वह क्रिएटर है। जो समाजसेवी बिना प्रचार के लोगों की सहायता करता है, वह क्रिएटर है। जो युवा ज्ञान, विज्ञान, संस्कृति और जागरूकता से जुड़ी सामग्री बनाता है, वह क्रिएटर है। क्रिएटर होने का अर्थ केवल कैमरे के सामने आना नहीं है। क्रिएटर होने का अर्थ है—कुछ रचना, कुछ सृजित करना, कुछ उपयोगी देना। यदि किसी की सामग्री लोगों को सोचने, सीखने या बेहतर बनने के लिए प्रेरित करती है, तो वह वास्तविक रचनात्मकता है। और यदि कोई व्यक्ति केवल सम्मान की फोटो के लिए सक्रिय है, तो उसके पास पहचान हो सकती है, लेकिन पहचान और योगदान एक ही बात नहीं हैं।

सम्मान और आत्मसम्मान, सम्मान बाहर से मिलता है, आत्मसम्मान भीतर से पैदा होता है। बाहरी सम्मान के लिए मंच चाहिए, प्रमाणपत्र चाहिए, फोटो चाहिए और कभी-कभी शुल्क भी। लेकिन आत्मसम्मान के लिए ईमानदारी, मेहनत और अपने कार्य पर विश्वास चाहिए। बाहरी सम्मान एक दिन मिल सकता है और दूसरे दिन भुलाया जा सकता है। ट्रॉफी टूट सकती है। प्रमाणपत्र पीला पड़ सकता है। फोटो पुरानी हो सकती है। सोशल मीडिया पोस्ट नीचे जा सकती है। लेकिन अच्छा काम लोगों के जीवन में परिवर्तन लाता है, तो उसका प्रभाव लंबे समय तक रहता है। इसलिए सम्मान प्राप्त करना बुरा नहीं है। सम्मान के पीछे भागते हुए अपने कार्य का उद्देश्य भूल जाना बुरा है। सम्मान को स्वीकार कीजिए, लेकिन सम्मान के लिए अपना विवेक मत बेचिए। पुरस्कार लीजिए, लेकिन पुरस्कार को अपनी योग्यता का एकमात्र प्रमाण मत बनाइए। मंच पर जाइए, लेकिन मंच से उतरने के बाद भी काम करते रहिए। आयोजक संस्था के लिए कुछ आवश्यक प्रश्नसम्मान समारोह आयोजित करना एक जिम्मेदारी भी है। आयोजकों को स्वयं से कुछ प्रश्न पूछने चाहिए—क्या सम्मान का चयन स्पष्ट मानदंडों पर हो रहा है? क्या शुल्क और आयोजन की शर्तें पहले से स्पष्ट हैं? क्या सहभागिता सम्मान और उपलब्धि-आधारित सम्मान में अंतर रखा जा रहा है?

क्या सम्मानित व्यक्ति के वास्तविक कार्य का परिचय दिया जा रहा है? क्या क्रिएटरों को केवल लोकप्रियता के आधार पर आँका जा रहा है या उनकी सामग्री की गुणवत्ता भी देखी जा रही है? क्या सम्मान समारोह का उद्देश्य प्रतिभा को प्रोत्साहित करना है या केवल आयोजन की भव्यता दिखाना? यदि इन प्रश्नों के उत्तर ईमानदारी से दिए जाएँ, तो सम्मान समारोह अपनी वास्तविक गरिमा बनाए रख सकते हैं। समाज की भूमिका सम्मान की संस्कृति केवल आयोजकों से नहीं बनती। समाज भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जब हम किसी व्यक्ति की ट्रॉफियों की संख्या देखकर उसकी योग्यता तय करते हैं, तो हम अनजाने में सम्मान को बाहरी दिखावे से जोड़ देते हैं।

जब हम किसी के काम की गुणवत्ता जाने बिना केवल उसके नाम के आगे “राष्ट्रीय” या “अंतरराष्ट्रीय” देखकर प्रभावित हो जाते हैं, तो हम प्रमाणपत्र को कार्य से अधिक महत्व देते हैं। जब हम सोशल मीडिया पर सम्मान की फोटो को देखकर बिना प्रश्न किए उसे बड़ी उपलब्धि मान लेते हैं, तो हम दिखावे को बढ़ावा देते हैं। इसलिए समाज को भी यह सीखना होगा कि सम्मान का मूल्य केवल मंच, ट्रॉफी और फोटो से नहीं, बल्कि व्यक्ति के वास्तविक योगदान से तय किया जाना चाहिए।

अंतिम व्यंग्य आज स्थिति यह है कि कुछ लोग सम्मान पाने के लिए काम करते हैं और कुछ लोग सम्मान देने के लिए कार्यक्रम आयोजित करते हैं। दोनों के बीच रुपये का पुल बना हुआ है।

सम्मानित व्यक्ति कहता है—“मुझे सम्मान मिला।”

आयोजक संस्था कहती है—“हमें सहयोग मिला।”

फोटोग्राफर कहता है—“हमें काम मिला।”

प्रिंटिंग वाला कहता है—“हमें ऑर्डर मिला।”

हॉल वाला कहता है—“हमें किराया मिला।”

सोशल मीडिया कहता है—“हमें कंटेंट मिला।”

और दर्शक कहता है—“हमें फोटो मिली।”

अंत में सबका सम्मान हो जाता है—सिवाय उस वास्तविक प्रतिभा के, जो यह सोचकर घर बैठी है कि उसके पास सम्मान खरीदने के लिए रुपये नहीं हैं। इसलिए आज के समय में एक नया नारा चल सकता है— “काम आपका, नाम हमारा; सम्मान आपका, शुल्क हमारा।” लेकिन समाज को यह तय करना होगा कि हम सम्मान को बाजार की वस्तु बनाना चाहते हैं या मेहनत और प्रतिभा का सच्चा सम्मान करना चाहते हैं। क्योंकि— रुपये से ट्रॉफी खरीदी जा सकती है, प्रमाणपत्र प्राप्त किया जा सकता है, मंच पर फोटो खिंचवाई जा सकती है, लेकिन वास्तविक सम्मान खरीदा नहीं जा सकता। वास्तविक सम्मान तब मिलता है, जब आपके काम से किसी का जीवन बेहतर होता है, जब आपकी रचना किसी को प्रेरित करती है, जब आपकी मेहनत समाज के काम आती है और जब लोग आपके नाम से पहले आपके कार्य को याद करते हैं। अंततः यही कहना उचित होगा— “रुपये मेरे सम्मान नहीं, मेरे सम्मान का साधन हो सकते हैं; मेरा असली क्रिएटर सम्मान मेरी रचना, मेरी मेहनत और मेरे योगदान से बनेगा।” और यदि कभी कोई पूछे— “आपको कितने सम्मान मिले हैं?” तो मुस्कुराकर कहिए— “इतने कि गिनने की आवश्यकता नहीं, और इतने काम किए हैं कि बताने की आवश्यकता नहीं।” यही सच्चे सम्मान की पहचान है।



आशीष रस्तोगी



अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

खबर करना पड़ा

था नहीं कोई इरादा पर खबर करना पड़ा
वक्रत और हालात पर हमको नज़र करना पड़ा

वक्रत के करतब अनोखे अनवरत चलते रहे
दृश्य भी हमको छबीले स्वप्न बन छलते रहे
प्रीत का मधुमास मन को दिग्भ्रमित करता रहा
आसमां पर रंग फूलों के सदा भरता रहा
चांद तारों के नज़ारों पर गुज़र करना पड़ा
वक्रत और हालात पर हमको नज़र करना पड़ा

व्योम के प्राकल्प की अद्भुत छटा पर्वत शिखर
है समाहित भावना में बादलों को पार कर
नृत्य करते मोर के पांवों में सावन का नमन
या पपीहा कर रहा बूंदों का जैसे आचमन
धूप को मुट्ठी में भरकर ये सफर करना पड़ा
वक्रत और हालात पर हमको नज़र करना पड़ा

इन पलासों की दहक में प्रीत है अनुराग है
पीर का अतिरेक है पर ये गुलाबी फाग है
घुल रहे हैं रंग कितने धुल रहा हर मैल है
मन के वृंदावन में मंचित अनुगृहित ये खेल है
आस्था विश्वास के कदमों में सर करना पड़ा
वक्रत और हालात पर हमको नज़र करना पड़ा
था नहीं कोई इरादा पर खबर करना पड़ा
वक्रत और हालात पर हमको नज़र करना पड़ा



दिनकर राव दिनकर

जरूरत और चाहत के बीच का अंतर

मनुष्य का जीवन दो शब्दों के बीच लगातार अपनी दिशा तलाशता रहता है:- जरूरत और चाहत। दोनों एक-दूसरे के बहुत करीब दिखाई देते हैं, फिर भी इनके बीच की महीन रेखा पहचान ली जाए तो जीवन की अनेक उलझनें स्वतः कम होने लगती हैं।

जरूरत वह है जिसके अभाव में जीवन या उसका कोई आवश्यक पक्ष प्रभावित होने लगे, जबकि चाहत जीवन को अपनी पसंद के अनुसार अधिक सुंदर, सुविधाजनक अथवा विशिष्ट बनाने की इच्छा है। जरूरत अक्सर एक निश्चित बिंदु पर पूरी हो जाती है, पर चाहत का स्वभाव आगे बढ़ते रहने का है।

पढ़ने के लिए एक अच्छी पुस्तक की आवश्यकता हो सकती है, लेकिन उसका विशेष संग्रहणीय संस्करण पाने की इच्छा चाहत है। संवाद के लिए मोबाइल उपयोगी है, किंतु हर नया मॉडल आते ही अपना फोन पुराना लगने लगे, तो आवश्यकता नहीं बदली- हमारी अपेक्षा बदल गई है। यात्रा मन को विश्राम और नए अनुभव दे सकती है, लेकिन यात्रा का आनंद लेने से अधिक उसकी तस्वीरें दूसरों को दिखाने की चिंता होने लगे, तो अनुभव के साथ प्रदर्शन की चाह जुड़ गई है।

यही चाहत की विशेषता है, वह हमेशा किसी वस्तु के रूप में सामने नहीं आती।

कभी वह प्रशंसा की होती है, कभी प्रतिष्ठा की, कभी दूसरों से आगे निकलने की, तो कभी अपने महत्त्व को बार-बार प्रमाणित करने की। हमारे पास पर्याप्त होते हुए भी किसी दूसरे को देखकर अपना कम लगने लगे, तो कमी वस्तुओं में नहीं, दृष्टि में पैदा हुई है।

यह अंतर रिश्तों में और भी सूक्ष्म हो जाता है। किसी अपने का साथ और अपनापन जीवन की भावनात्मक आवश्यकता हो सकता है, किंतु वह हर समय हमारे लिए उपलब्ध रहे, हमारी प्रत्येक बात से सहमत हो और हमारे अनुसार ही निर्णय ले- यह अपेक्षा है। माता-पिता बच्चों का सुख चाहते हैं, लेकिन जब उनके सुख की परिभाषा भी स्वयं तय करने लगते हैं, तब स्नेह के साथ अपनी इच्छा भी जुड़ जाती है।

काम और उपलब्धियों में भी यही स्थिति दिखाई देती है। आगे बढ़ने की आकांक्षा मनुष्य को परिश्रम के लिए प्रेरित करती है, लेकिन यदि हर उपलब्धि अगली उपलब्धि के सामने छोटी पड़ जाए, तो सफलता आनंद देने के बजाय अंतहीन दौड़ बन जाती है। मंजिलें मिलती रहती हैं, पर मन कहीं पहुँच नहीं पाता।

---**चाहत स्वयं में गलत नहीं है।**

बेहतर शिक्षा, सुंदर घर, नई भाषा सीखने, दुनिया देखने, पुस्तक लिखने या व्यवसाय को आगे बढ़ाने की इच्छा जीवन को गति और विस्तार देती है। मनुष्य की अनेक उपलब्धियों के पीछे कुछ बेहतर पाने की यही आकांक्षा रही है। कठिनाई तब उत्पन्न होती है जब हम प्रत्येक चाहत को आवश्यकता मानकर उसे पूरा करने का दबाव स्वयं पर डालने लगते हैं।

आज बाजार और सामाजिक परिवेश इस अंतर को और धुँधला कर देते हैं। जो वस्तु कल तक सुविधा थी, कुछ समय बाद अनिवार्य लगने लगती है। जो पहनावा हमारे लिए पर्याप्त था, किसी समारोह में दूसरे को देखकर साधारण लग सकता है। जो घर हमें प्रिय था, किसी अधिक भव्य घर को देखकर छोटा लगने लगता है। हमारे पास जो है, उसमें वास्तविक कमी आए बिना भी तुलना हमारे भीतर अभाव पैदा कर देती है।

शायद इसीलिए मनुष्य की कुछ सबसे बड़ी चाहतें खरीदी भी नहीं जा सकतीं।

किसी को पहचान चाहिए, किसी को प्रशंसा; किसी को अधिक समय चाहिए, किसी को अपनों का साथ। कोई भीड़ में अपनी उपस्थिति चाहता है तो कोई किसी एक व्यक्ति के जीवन में अपना महत्त्व। इन इच्छाओं की कोई निश्चित कीमत या सीमा नहीं होती, इसलिए इन्हें समझना भौतिक जरूरतों से कहीं अधिक कठिन है।

कई बार हम स्वयं से कहते हैं-

“मुझे इसकी जरूरत है।”

लेकिन थोड़ी देर ठहरकर विचार करें तो समझ आता है कि हमें उस वस्तु, उपलब्धि या व्यक्ति की उतनी जरूरत नहीं थी, जितनी उससे मिलने वाले किसी विशेष एहसास की- सुरक्षा, प्रतिष्ठा, सुविधा, स्वीकृति अथवा अपनत्व की।

यहीं आत्ममंथन आवश्यक हो जाता है।

हर इच्छा को दबा देना संतोष नहीं और हर इच्छा पूरी कर लेना समृद्धि नहीं। वास्तविक संतुलन यह जानने में है कि किस इच्छा को पूरा करने के लिए प्रयास करना चाहिए, किसे कुछ समय देना चाहिए और किसे सहजता से जाने देना चाहिए।

इसके लिए स्वयं से एक छोटा-सा प्रश्न पूछा जा सकता है-

“यदि यह मुझे न मिले, तो क्या मेरे जीवन का कोई आवश्यक पक्ष सचमुच प्रभावित होगा, या केवल मेरा मन कुछ समय के लिए असंतुष्ट रहेगा?”

उत्तर कई बार हमारी प्राथमिकताएँ स्पष्ट कर देता है।

जीवन की सम्पन्नता केवल इस बात से तय नहीं होती कि हमने कितना अर्जित किया, बल्कि इससे भी होती है कि हमने ‘पर्याप्त’ को कब पहचाना। क्योंकि जिसे पर्याप्त का अर्थ समझ आ गया, वह इच्छाओं से विहीन नहीं होता; वह केवल उनका स्वामी रहता है, दास नहीं।

अतः जरूरतों को सम्मान दें, चाहतों को दिशा दें और तुलना को अपने संतोष का पैमाना न बनने दें। जो आवश्यक है, उसके लिए पूरे मन से प्रयास करें; जो प्रिय है, उसका आनंद लें और जो केवल अनावश्यक बोझ बढ़ा रहा है, उसे छोड़ना भी सीखें।

क्योंकि जीवन की वास्तविक सम्पन्नता सब कुछ पा लेने में नहीं, बल्कि यह समझ लेने में है कि हमारे लिए वास्तव में क्या जरूरी है और कितना पर्याप्त।



डॉ. प्रीति समकित सुराना

अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।



राहत की चाहत



मीलों लम्बे
थके हुए सफर से
कुछ राहत की चाहत
इस ठंडी
खुरदरी चट्टान से,
जो तैयार है
वज़न सहने को
मेरी देह का
मेरे झोले का
और पग-पग सहारा देती
उस छड़ी का
जो मानवीय रिश्तों से
कहीं अधिक
साथ निभाने को वचनबद्ध
है।

एक रात की ही सही
सरपरस्ती किसी मायने में
कम नहीं उस बूढ़े पेड़ की,
जिसका लहराता पत्ता
आकर
बुजुर्गों के
आशीर्वादतुल्य
मेरे बालों को सहला देता
है।

वहीं दूर
कुछ दूर,
पहाड़ों को चीरती हुई
कल-कल करती बहने वाली नदी,
प्रचलाम निरंतरम का
संगीतमय सन्देश
प्रवाहित कर
राहगीरों का उत्साह
बढ़ा रही है।

क्षितिज पर
धीरे-धीरे अपना
सिंदूरी अंगोछा समेटते हुए
सूरज भी
अस्ताचल अवस्था में है।

सान्ध्यबेला में
धुंधलाते आकाश में
अपने नीड़ को मुखातिब
पंख फैलाए परिंदे
लौट रहे हैं,
जहाँ चोंच फैलाए
उनके चूजों की क्षुधा
शांत होने को
बस कुछ पल शेष हैं।

मेरे सफर का यह पड़ाव
न स्थाई ठौर-ठिकाना है,
न कोई मंज़िल,
सिर्फ एक ठहराव है
रात भर का,
इन्तजार है तो बस
एक नई भोर का
जो कल-कल करती नदी
का सन्देश,
दुगुने उत्साह के साथ
आज के थके हुए
इस मुसाफ़िर को
सुनाने को आतुर हो।



प्रदीप कुमार अरोरा

युग परिवर्तन

यह कलयुग की अंतिम सीमा,
या उससे आगे की भोर है,
चारों ओर पसरा अधियारा,
बिकती निष्ठा का शोर है।

इस नए दौर की नई कहानी,
सीधा-सादा हार रहा,
छल-प्रपंच की ओढ़ चुनरिया,
पाप यहाँ व्यापार हुआ।

या तो यहाँ बचेगा नंगा,
या फिर केवल भिखमंगा,
सच्चाई की बहती धारा में,
पाखंडी फैलाए दंगा।

जो नैतिकता की बात करेगा,
पागलखाने जाएगा,
ईमान, अंतरात्मा चिल्लाने वाला,
जेल के भीतर सड़ जाएगा।

मेहनत की जो रोटी अर्जें,
उसकी लूटी जाएगी कमाई,
निठल्लों को मुफ्त बाँटकर,
फ़ौज आलसियों की जाएगी बनाई।

न्याय की आँखें अंधी थीं,
अब देख के फ़ैसला करती हैं,
किसकी क्या है जात यहाँ,
उस पर सजा तय होती हैं।

अपराध बराबर हो बेशक,
पर सज़ा गोत्र पर निर्भर है,
सच्चा मुजरिम मुस्कुराए,
निर्दोष कटघरे में हाजिर है।

यह युग नंगा, यह युग भूखा,
चेतना खो चुका इंसान,
क्या यही अंत है सभ्यता का?
या बचा रहेगा कुछ ईमान?

महाजनो येन गतः स पंथाः

उनकी यादों ने
और,
आपकी बातों ने
मेरा जीवन दुश्वार कर दिया है ...,

मेरी आशा मर गई है
और,
आपकी अदालत ने
मुझे उसका दोषी करार दिया है।



अरुण कुमार झा 'विनोद'



शिखर चंद जैन

एक विचार से अविस्मरणीय हिन्दी पखवाड़े तक...



पं.क्र. (04/21/05/207665/19)
**अन्तरा
शब्दशक्ति**
www.antrashabdshakti.com
प्रकाशन एवं बहुदेशीय संस्था

सोमवार, 28 सितम्बर 2026

इन दिनों मेरी अपनी स्वास्थ्य संबंधी परिस्थितियाँ और यात्राएँ लगातार चल रही थीं। उपचार के बीच भी मन में एक बात बार-बार आ रही थी कि जब हम हिन्दी के लिए कार्य कर रहे हैं, तब ऐसी स्थिति में यदि अन्तरा शब्दशक्ति जैसी संस्था में कोई गतिविधि ही न हो, तो यह कितना गलत होगा।

अफस के दौरान ही मन में अमरामयिक समस्याओं पर लेख प्रतियोगिता का विचार आया।

मैंने सोचा था कि 11 सितम्बर से 20 सितम्बर तक अधिकतम 25-30 आलेख आ जाएँगे। इतनी संख्या में आए आलेखों को व्यवस्थित करना सम्भव भी लग रहा था। लेकिन लगातार आलेख आते रहे... 20 सितम्बर की शाम तक कुल 77 आलेख मेरे पास पहुँच चुके थे।

77 आलेख!

यह संख्या मेरी सोच से कहीं धरे थी!



एक ओर इतनी बड़ी संख्या में रचनाकारों का उत्साह देखकर मन प्रसन्न था, तो दूसरी ओर एक चिंता सामने खड़ी थी, इन सभी आलेखों का समय पर तकनीकी और प्रकाशन संबंधी कार्य कैसे पूरा होगा?

मेरे पास ऐसी कोई बड़ी तकनीकी टीम नहीं थी, जो अगले आठ दिनों में PDF, प्रमाण-पत्र, ई-बुक, लिंक और फेसबुक अपडेट जैसे इतने सारे काम सँभाल सके।

अन्तरा शब्दशक्ति का सौभाग्य है कि **क्वाट्सऐप पर आयोजित हमारे विभिन्न कार्यों में अदिति रूसिया जी, नंदिता तनुजा, सोनम लड़ीवाला और ऐसे कई सहयोगी** हैं, जो आवश्यकता पड़ने पर मुझे सँभाल लेते हैं। **प्रकाशन के कार्य में संदीप सोनी** का तो कोई सानी ही नहीं। **और इन सारे कार्यों के पीछे मेरी सबसे बड़ी ऊर्जा है—मेरे पतिदेव समकित और मेरे बच्चे तन्मय, जयति और जैनम।**

जब भी कोई कठिनाई सामने आती है, ये सभी मिलकर उसका हल खोजने में मेरे साथ खड़े होते हैं।

लेकिन इस बार समस्या कुछ बड़ी थी। 77 आलेख और केवल आठ दिन!

इतने कम समय में इतना सारा कार्य कैसे पूरा होगा?

इसी चिंता का निवारण किया **WebCoodee.com** की टीम ने।

आज **WebCoodee.com** केवल अन्तरा शब्दशक्ति की वेबसाइट की क्रिएटर और प्रमोटर ही नहीं, बल्कि अब उसके संपादकीय कार्य में भी हमारे साथ खड़ी है।

इस **टीम ने केवल आठ दिनों में परिणाम सहित PDF, प्रमाण-पत्र, ई-बुक, आवश्यक लिंक और फेसबुक अपडेट तैयार** करके इस पूरे कार्य को समय पर पूरा करने में जी-जान लगा दी।

जो काम उस समय मुझे एक स्वप्न जैसा लग रहा था, वह नियत समय में हमारे सामने था।

यह उपलब्धि किसी एक व्यक्ति की नहीं है।

इसके पीछे रचनाकारों का विश्वास है,
अन्तरा परिवार का सहयोग है,
परिवार का साथ है,
सहयोगियों की ऊर्जा है

और WebCoodee.com की पूरी टीम का अथक परिश्रम है।

इसलिए आज मन से केवल यही कहना चाहती हूँ—

आभार रचनाकारों का।

आभार अन्तरा परिवार का।

आभार मेरे परिवार का।

आभार सभी सहयोगियों का।

और विशेष रूप से आभार WebCoodee.com की पूरी टीम का।



आप सभी ने मिलकर एक विचार को केवल प्रतियोगिता नहीं रहने दिया, बल्कि उसे एक अविस्मरणीय हिन्दी पखवाड़े में बदल दिया। एक ऐसा हिन्दी पखवाड़ा, जो लंबे समय तक याद रहेगा।

**आप सभी को इस अविस्मरणीय
हिन्दी पखवाड़े की हार्दिक बधाई एवं
शुभकामनाएँ।**

डॉ. प्रीति समकित सुराना

संस्थापक एवं संपादक

अन्तरा शब्दशक्ति

संस्था एवं प्रकाशन

antrashabdshaktie@gmail.com

9009423393 / 9009465259



सृजन के तीन श्रेष्ठ हस्ताक्षर

चयनित रचनाकार



77 आलेखों में से चयन कठिन था पर तीनों चयनित लेखों के विषय और मुख्य कारण

समसामयिक समस्याओं पर आधारित इन तीनों लेखों में अलग-अलग सामाजिक एवं मानवीय संकटों को सामने रखा गया है। तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर विषय-विस्तार और कारणों की बहुस्तरीयता के क्रम में संक्षिप्त प्रस्तुति



प्रथम

नफे सिंह योगी

“विश्वास का टूटना आईना — वैवाहिक रिश्तों में विश्वासघात और उसका दुष्परिणाम”
मुख्य कारण — संवादहीनता, भावनात्मक दूरी, अविश्वास, अपमान, आर्थिक तनाव, अकेलापन, ईर्ष्या, सामाजिक दबाव और स्वात्मिक की मानसिकता। लेख इन कारणों को वैवाहिक हिंसा एवं गंभीर घटनाओं से जोड़ता है।



द्वितीय

खुशी

“भीड़ में बढ़ता अकेलापन : आधुनिक मनुष्य की सबसे बड़ी विडंबना”
मुख्य कारण — संबंधों की गहराई में कमी, वास्तविक संवाद का कम होना, मोबाइल/स्क्रीन पर बढ़ती निर्भरता, अत्यधिक विकल्प, बदलती जीवनशैली और एक-दूसरे के लिए समय की कमी।



तृतीय

आचार्या शिखा चंदेल

डिजिटल युग में अकेलापन, घटता संवाद और संवेदनशीलता/शिक्षा का संकट
मुख्य कारण — तकनीक का अत्यधिक उपयोग, परिवार में संवाद की कमी, बच्चों एवं बुजुर्गों से दूरी, बदलती जीवनशैली और कमजोर सामाजिक जुड़ाव। समाधान में परिवार, शिक्षा और सामुदायिक सहभागिता पर जोर दिया गया है।



मुख्य कारणों की तुलनात्मक दृष्टि

नफे सिंह योगी

व्यक्तिगत, पारिवारिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक—चारों स्तरों पर कारणों को जोड़ा गया है। लेख यह रेखांकित करता है कि समस्या अचानक नहीं बनती, बल्कि लंबे समय की उपेक्षा, संवादहीनता, तनाव और अविश्वास से संबंधों में दरार गहराती जाती है।

खुशी

मुख्य केंद्र आधुनिक मनुष्य का भावनात्मक अकेलापन है। संपर्क बढ़ने के बावजूद वास्तविक साथ और आत्मीय संवाद कम होने की स्थिति को प्रमुखता दी गई है। तकनीक के साथ बदलती जीवनशैली और संबंधों को भी कारण माना गया है।

आचार्या शिखा चंदेल

तकनीक और सामाजिक दूरी के साथ परिवार, बच्चों की परवरिश, शिक्षा और सामुदायिक जीवन को भी समस्या से जोड़ा गया है। समाधान के रूप में परिवार में साथ बैठना, मोबाइल से दूरी, बच्चों से संवाद, पुस्तक-पठन और बुजुर्गों से बातचीत जैसे व्यावहारिक उपाय रखे गए हैं।

एक धंक्ति में तीनों लेख

नफे सिंह योगी — वैवाहिक विश्वास और संवाद का संकट।

खुशी — आधुनिक जीवन में भावनात्मक अकेलेपन का संकट।

आचार्या शिखा चंदेल — तकनीक, परिवार, शिक्षा और सामाजिक संवेदनशीलता का संकट।

अन्तरा शब्दशक्ति — समसामयिक समस्याओं पर लेख प्रतियोगिता

विषय की गंभीरता, कारणों की व्यापकता और समाधान की दृष्टि से लेखों का तुलनात्मक अध्ययन।



अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

रख हौसला, खुदा पर तू....

ना कर उम्मीदें किसी
से भी अपने लिए।
खुदा ने कुछ सोच कर ही
तुझे बनाया होगा।
तुझे आजमाया ज़माने में
जिसने भी होगा, वो भी
देख तेरे हौसले कभी
तो पछताया (खेद) होगा।
ना तोड़ अपनी उम्मीदें
इस ज़माने के लिए,
ना कर अहंकार अपने पर तू।
बस रख भरोसा, उस खुदा पर तू।
दूसरों की ज़िन्दगी में कर प्रकाश
आगे यूँ ही बढ़ती जा तू।
दिया जिन्होंने तेरा साथ
तेरी कठिनाईयों में,
उनकी उम्मीदों के दीये बन
बस आगे बढ़ती जा तू।
ना रख उमीदें किसी से
किसी मकसद के लिए तो
खुदा ने तुझे बनाया ही होगा।



विशाखा सिंघला।

अशक

आंख का आंसू हथेली पे डोल गया,
मन की व्यथा का राज खोल गया।
इशारों ही इशारों में बात हुई,
हथेली में ही उससे मुलाकात हुई। शिवा सिंहल आबुरोड
यारों जमीं पे खतों की बरसात हुई,
सन्नाटे सी विरानीयो में रोशन खुशियों की बाहर हुई।
अशक को देख खाली गगरी भी झलकने लगी,
बुझे-बुझे मन में दीदार की आस मचलने लगी।

ये सांसे बेधड़क धड़कने लगी,
हवाएं भी बेशर्म होकर मचलने लगी।
बलखाती जुल्फे इत्र सी महकने लगी,
उसकी मुस्कान कानों में पायल सी छनकने लगी।
ऐ एक अशक ने जोकर सा कमाल कर दिया,
गली में धमाल तो दिल में तहलका मचा दिया।

वो जब जब आया

वो जब जब आया
ममता और दुलार से मुझे भर दिया
कभी कभी वो मुझे बच्चा बनाकर
मुझपर सारा लाड़ उड़ेल देता है

और मैं बच्चा बन अपनी
सारी थकान उसके कांधों पर रख
सो जाया करती हूँ

मेरे माथे पर उग आई लटें
वो बड़े प्यार से हटाते हुए
जब मुझे निहारता है
तो मेरी मुस्कान उसके
चेहरे पर उतर आती है

यूँ लगता है जैसे
कबूल कर लिया खुदा ने
हमारा सफेद दूधिया
लाड़ से भरा
ममता और दुलार की चादर ओढ़े
स्नेहिल दूधिया इश्क।



शिवा सिंहल आबुरोड



महक छाबड़ा

बेखुदी

रात के टुकड़े पे पलना छोड़ दे
वक्त के साँचे में ढलना छोड़ दे

तू ख्वाब है जागती आँखों का
बंद पलकों में मचलना छोड़ दे

इश्क में एहतियात है लाज़िम
बेखुदी में अब रहना छोड़ दे

चटक गया है दिल का आईना
हर पल इसमें सवरना छोड़ दे

है सुकु दिल को न चैन रूह को
हसरतों के पीछे पड़ना छोड़ दे

सच कितना भी गर कड़वा लगे
साथ झूठ के तू चलना छोड़ दे

एक ही लम्हे में ज़िंदगी जी लीये
ताउम्र घुट घुट के मरना छोड़ दे

है इल्म मुझको तुम नहीं हो मेरे
ज़ख्मों से तू अब रिसना छोड़ दे

महक जाती हूँ तेरे अल्फ़ाजों में
किताबों में खत रखना छोड़ दे

जमी पर मुहब्बत जो सोई नहीं है
साथ तारों के "मधु" जगना छोड़ दे



मधु टाक



अन्तरा शब्दशक्ति – हिन्दी साहित्य, प्रकाशन और रचनाकारों के सशक्तिकरण का राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय मंच।

थोड़ी ज़मीं थोड़ा आसमान

स्त्री के विविध रूपों और विवशताओं के प्रतिबिंब दिखाते दर्पणों का संग्रह है थोड़ी ज़मीं - थोड़ा आसमान।

संग्रह की कविताओं की भावभूमि पर कदम रखने से पहले यह जानना जरूरी है कि प्रीति ने अपनी रचनाओं को जब जिल्दबंद किया तो यही शीर्षक क्यों चुना? सृष्टि के आरम्भ के पश्चात जब सामाजिक परिकल्पना ने आकार का विस्तार किया तो नहीं पता था कि समाज की बागडोर पुरुषों के हाथ में रहेगी और स्त्री घर की चारदीवारी में रहकर पितृसत्तात्मक समाज के बनाए नियमों का अनुसरण करेगी। युग बदले, पीढ़ियाँ बदलती गईं लेकिन सोच नहीं बदली। उसी सोच ने स्त्री मन में विद्रोह के बीज बोए और वही प्रस्फुटित होकर ऐसा वृक्ष बने जिसकी जड़ें धरती में समाई रहीं और शाखाओं ने विस्तार कर आकाश छूने का प्रयास किया।

इस बात को ध्यान में रखते हुए यदि विचार किया जाए तो स्त्री के संदर्भ में ज़मीं और आसमान उसके अस्तित्व, सहनशक्ति, व्यापकता और पीढ़ी दर पीढ़ी बदल रहे उसके स्वरूपों का प्रतीतात्मक प्रतिबिंब दिखाई पड़ता है।

ज़मीं अथवा धरती जिस प्रकार सब कुछ सहकर भी स्थिर रहती है और जीवन देने के साथ पालन पोषण करती है, वैसे ही स्त्री भी मातृत्व और सृजन का आधार होती है। सहजता एवं क्षमाशीलता भी उसके धरा सम होने को प्रमाणित करते हैं।

अब बात करते हैं आसमान की। सर्वविदित है कि जब हम आसमान की तरफ़ देखते हैं, उसकी ऊँचाई और असीमित संभावनाएँ दिखाई देती हैं। स्त्री के परिप्रेक्ष्य में आकाश का अर्थ इन्हीं असीमित संभावनाओं, महत्वाकांक्षाओं से है जिनकी कोई सीमा नहीं है। आज की स्वतंत्र नारी, अपनी योग्यताओं को पंख बनाकर आसमान की ऊँचाइयों को छूना चाहती है।

स्त्री मन की विशालता और उदारता भी आसमान की तरह विस्तृत हैं।

संग्रह की कविताओं में स्त्री के बिंब में, धरती की गहराई तथा आकाश की ऊँचाई को केन्द्रीय भाव मानकर पीड़ा से प्रतिरोध का सफ़र तय किया है, अतः इस संग्रह के लिए इससे बेहतर शीर्षक हो ही नहीं सकता था।

प्रीति ने संग्रह की शुरुआत में स्वीकार किया है कि "थोड़ी ज़मीं-थोड़ा आसमान" उसकी अनुभूतियों की यात्रा है। गौर से सुना जाए तो मन-मस्तिष्क में स्त्री मन की अनुगूँज का अनुनाद स्पष्ट सुनाई देता है।

61 रचनाओं के संकलन वाले इस संग्रह का आरम्भ गुरुचरणों में श्रद्धा-सुमन रूपी शब्दों से हुआ है।

शीश नवाऊँ गुरु को मैं,
श्रद्धा सुमन चढ़ाऊँ गुरु को मैं,
आशीष आपका मिल जाए,
जग से तर जाऊँ फिर तो मैं।

उसके बाद **माँ वीणा वादिनी** और जन्मदाताओं को तथा जन्मस्ली वीरभूमि राजस्थान को अपनी शब्दांजली अर्पित की है।

राजस्थान के लिए मन के भावों को इन पंक्तियों में देखा जा सकता है -

धरा नहीं कोई यह मामूली है,
सतरंगी सी साँझ यही है,
सदियों की स्मृति यहाँ बसती,
अपना प्यारा राजस्थान यही है।

नानी_माँ, कविता जैसे नानी की स्मृतियों को उनके सम्पूर्ण जीवन से जोड़ कर, हर पल को आँखों में चलचित्र सा गतिमान करती लगती है।

सुदर्शन फाकिर की मशहूर नज़्म "ये दौलत भी ले लो ये शोहरत भी ले लो.... में नानी हैं, इस रूप में -

मोहल्ले की सब से पुरानी निशानी
वो बुढ़िया जिसे बच्चे कहते थे नानी
वो नानी की बातों में परियों का डेरा
वो चेहरे की झुर्रियों में सदियों का फेरा
भुलाए नहीं भूल सकता है कोई
वो छोटी सी रातों वो लम्बी कहानी

प्रीति ने फिर एक बार नानी के आँचल की छांव में बिठा दिया है, आँखें भीगी हैं और नानी, उस छलकती नमी को अपने आँचल की कोर में सहेज ले रही हैं।

नानी के साथ, #माँ और #पापा कविता में उनके लिए प्रीति के मन के भावों का आईना दिखाई देता है।

प्रीति के चिंतन में आसमान सा फैलाव है। फिर एक बेटी की बेबसी कैसे न दिख पाती।

#टूटती_लड़की रचना में युवतियों की पीड़ा व बेबसी को उतार दिया है। एक बानगी है,

कितने इल्जाम लिए-जिए जाती है, लड़की

टूट कर फिर भी पल-पल मुस्कुराती है लड़की।

यूँ तो इस संग्रह की प्रत्येक रचना बहुत प्रभावित करती है और जी चाहता है यहाँ उल्लेख किया जाए परन्तु, संग्रह के प्रति पाठक की जिज्ञासा बनी रहे इसलिए पर्दादारी लाजिमी है।

शीर्षक रचना #थोड़ी_ज़मीं_थोड़ा_आसमान की चार पंक्तियाँ और उद्धृत करना चाहूँगा -

थोड़ी ज़मीं थोड़ा आसमान रहने दो
मेरे पंखों में थोड़ी परवाज़ रहने दो
इस दुनिया में है हस्ती मेरी भी शामिल,
मेरे नाम का एक मकान रहने दो।

जन्म के बाद बेटी को पराया धन बताकर कहा जाता है, पराई अमानत हो। अपने घर जाना है तुम्हें। वो नादान यह सोचकर बड़ी होती रहती है कि विवाह के बाद उसका अपना घर होगा। छली जाती है अक्सर जब ससुराल में भी उसे घर में अपने लिए स्पेस नहीं मिलता। इस एक पंक्ति "मेरे नाम एक मकान रहने दो" में वेदना के साथ वास्तविकता भी लिख दी है प्रीति ने। मैं चाहता हूँ, जो भी काव्य-प्रेमी हैं और कविता के रूप में अच्छा पढ़ने की आशा करते हैं उन्हें, इस संग्रह को अवश्य पढ़ना चाहिए। ऐसे काव्य-संग्रह कम ही आते हैं जिनमें रचनाएँ, समाप्त होने पर ज़हन में सवाल की एक तरतीब शुरू कर जाती हैं मन, तलाशता रहता है उन सवालों के जवाब।

सही मायने में यही कविता है और यही है कविता की सार्थकता। बाबूजी कहती है मुझे। मेरा स्नेह और आशीर्वाद तो हमेशा उसके साथ रहता है लेकिन, जब इस संग्रह पर उसकी लिखावट में अपने लिए उसकी स्नेह टीप को पढ़ा, मन भर आया और बहुत प्रसन्नता की अनुभूति हुई। इस अनमोल उपहार एवं आपकी उपलब्धि के लिए ढेरो बधाई एवं शुभाशीष। हमेशा खुश रहो एवं इसी तरह साहित्य को समृद्ध करती रहो।

बहुत प्यार एवं शुभकामनाओं के साथ,
आपका बाबूजी।

मुकेश दुबे, सिहोर (म.प्र.)

